* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८० रुपये

भगवती कमला

भगवान् श्रीमहागणपति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा।
दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४ | गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, नवम्बर २०२० ई० | संख्या ११
पूर्ण संख्या ११२८

गजानन-स्तवन

नमामि देवं द्विरदाननं तं यः सर्वविघ्नं हरते जनानाम्।
धर्मार्थकामांस्तनुतेऽखिलानां तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय॥
कृपानिधे ब्रह्ममयाय देव विश्वात्मने विश्वविधानदक्ष।
विश्वस्य बीजाय जगन्मयाय त्रैलोक्यसंहारकृते नमस्ते॥
त्रयीमयायाखिलबुद्धिदात्रे बुद्धिप्रदीपाय सुराधिपाय।
नित्याय सत्याय च नित्यबुद्धे नित्यं निरीहाय नमोऽस्तु नित्यम्॥

मैं उन गजाननदेवको नमस्कार करता हूँ, जो लोगोंके समस्त विघ्नोंका अपहरण करते हैं। जो सबके लिये धर्म, अर्थ और कामका विस्तार करते हैं, उन विघ्नविनाशन गणेशको नमस्कार है। हे कृपानिधे! हे देव! हे विश्वकी रचना करनेमें कुशल! आप विश्वरूप, ब्रह्ममय तथा विश्वके बीज हैं; जगत् आपका स्वरूप है। आप ही तीनों लोकोंका संहार करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। तीनों वेद आपके ही स्वरूप—आपके ही तत्त्वके प्रतिपादक हैं, आप सम्पूर्ण बुद्धियोंके दाता, बुद्धिके प्रकाशक और देवताओंके अधिपति हैं। हे नित्यबोधस्वरूप! आप नित्य, सत्य और निरीह हैं; आपको सदा-सर्वदा नमस्कार है। [श्रीगणेशपुराण]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, नवम्बर २०२० ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- गजानन-स्तवन	३
२- कल्याण	५
३- भगवती महालक्ष्मीजी **[आवरणचित्र-परिचय]**	६
४- पातिव्रत्यकी महिमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७
५- श्रीरामचरितमानसमें श्रीभरतजीकी अनन्त महिमा (साकेतवासी श्रद्धेय श्रीकृपाशंकरजी 'रामायणी')	९
६- दीन-दुखियोंके प्रति कर्तव्य (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१३
७- धर्म और सम्प्रदाय (ब्रह्मचारिणी सुश्री प्रज्ञाजी)	१५
८- सर्वोपरि साधन—सत्संग **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१७
९- विघ्नहर्ता गणपति गणेश [एक सांस्कृतिक रेखांकन] (डॉ० श्रीअजितकुमारसिंहजी, आई०पी०एस०)	२१
१०- भगवती लक्ष्मीके ऐहिक वास-स्थान (स्वामी श्रीरामराज्यम्जी महाराज)	२३
११- श्रीरामचरितमानसमें रावण-प्रबोधके प्रसंग (पद्मश्री प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र, पूर्व कुलपति—सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)	२६
१२- आत्मविकासके सोलह सूत्र (श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)	३१

विषय	पृष्ठ-संख्या
१३- तमिलनाडुका कन्याकुमारी शक्तिपीठ **[तीर्थ-दर्शन]** (श्रीसुदर्शनजी अवस्थी)	३४
१४- श्रीरामभक्त पण्डितराज उमापतिजी त्रिपाठी 'वसिष्ठ' **[संत-चरित]** (श्रीअम्बिकेश्वरपतिजी त्रिपाठी)	३६
१५- श्रीराम-नामकी महिमा	३९
१६- प्रसन्नताका रहस्य (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	४०
१७- कलियुगमें साक्षात् कामधेनु **[गो-चिन्तन]**	४१
१८- साधनोपयोगी पत्र	४२
१९- व्रतोत्सव-पर्व [मार्गशीर्षमासके व्रत-पर्व]	४४
२०- व्रतोत्सव-पर्व [पौषमासके व्रत-पर्व]	४५
२१- **कृपानुभूति** माँ गंगाकी कृपा	४६
२२- **पढ़ो, समझो और करो**	
(१) दुआएँ	४७
(२) सतीत्वका तेज	४७
(३) गीताजीके पाठ और हवनसे रोगमुक्ति	४८
(४) सकारात्मक भाव	४९
२३- **मनन करने योग्य** सत्कारसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं	५०

चित्र-सूची

१- भगवती कमला	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भगवान् श्रीमहागणपति	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- भगवती कमला	(इकरंगा)	६
४- दुर्योधनद्वारा मद्रनरेश शल्यका सत्कार	(,,)	५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹ 3,000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—भगवान्‌के कृपा-बलसे जीवनकी सारी कठिनाइयाँ वैसे ही दूर हो जाती हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकार।

याद रखो—कठिनाइयाँ सारी मनमें होती हैं, बड़े घने अन्धकारका निर्माण संसारको इसी रूपमें सत्य माननेवाला तुम्हारा विषयासक्त मन ही करता है। भगवान्‌के कृपा-बलसे मनकी यह भ्रान्ति मिट जाती है। मलिन मन धुल जाता है, फिर किसी कठिनाईकी कल्पना भी नहीं रहती, सर्वत्र सर्वदा सरलताके साथ सदानन्दमयी प्रभु-कृपाकी झाँकी होती रहती है।

याद रखो—फिर जीवन-मरण, संयोग-वियोग, लाभ-हानि, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, जय-पराजयके कोई भी द्वन्द्व किसी प्रकारका असर नहीं करते; सभी कृपामयकी कृपा-लीलाके मधुर दृश्य बन जाते हैं।

याद रखो—जबतक तुम अपनेको भाग्यहीन, दुर्दशाग्रस्त, दुखी, निराश्रय, निराश, असहाय मानते हो, तबतक तुमने भगवान्‌के परम कृपाबलको नहीं अपनाया है। भगवान्‌के कृपाबलका आश्रय लेते ही भाग्य चमक उठता है, दु:खके बादल तितर-बितर हो जाते हैं, परम आश्रय पाकर चित्त उल्लसित हो उठता है, 'निराश और असहाय' माननेकी वृत्ति ही नष्ट हो जाती है। जिसको भगवत्-कृपाका आश्रय हो, उसमें निराशा और असहायताकी भावना क्यों रहने लगी?

याद रखो—तुम भगवान्‌के कृपापात्र हो, स्नेहपात्र हो, अपने हो, प्यारे हो—जगत्‌में चाहे तुम दीन, दुखी, घृणित, अपमानित, उपेक्षित, विषयपदार्थहीन, मलीन—कुछ भी माने जाते हो, कैसे भी दीखते हो—भगवान्‌की आत्मीयता, उनका प्यार किसी अवस्थामें जरा भी कम नहीं होता। सर्वभूत-सुहृद् भगवान्‌का स्वभाव बदले, तब कहीं उसमें कमीकी शंका हो। नित्य सम एकरस भगवान्‌का सर्वभूत-सौहार्द भी नित्य है; क्योंकि वह उनका स्वभाव है। फिर तुम जो अपनेको—सर्वलोकमहेश्वर, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञके सर्वथा और सर्वदा प्रीतिभाजन, प्रिय होनेपर भी, दीन-हीन भाग्यहीन मानते हो, इसीसे तुम दीन-दुखी रहते हो। अपनी इस झूठी मान्यताको छोड़ दो। भगवान्‌के अनुग्रहका, उनके सौहार्दका, उनकी प्रीतिका अनुभव करो और उनके कृपाबलको अपनी सम्पत्ति मानकर, उसपर अपना हक मानकर उससे सम्पन्न हो जाओ।

याद रखो—जगत्‌के ये सारे दु:ख-क्लेश, सारे अभाव-अभियोग, सारे शोक-विषाद तभीतक हैं—जबतक तुम्हें भगवान्‌की कृपाके दर्शन नहीं हुए। जिस क्षण भगवत्कृपाकी झाँकी तुम्हारे मनने की, उसी क्षण भगवत्कृपाका परम बल तुम्हारा सारा अभाव मिटा देगा।

याद रखो—अभावकी वृत्ति मनसे पैदा होती है, और जिस वस्तुका यथार्थमें अभाव है, उसकी कल्पनासे अभावकी वृत्ति शान्त होती नहीं, इसीसे प्रत्येक विषय-लाभ अभावकी अभिवृद्धि करनेवाला होता है। अभावका नाश तो होगा, भाववाली—जो है, सदा है, सदा रहेगी, उस सच्ची वस्तुकी प्राप्तिसे और वह सच्ची वस्तु है—नित्य सत्य भगवान्।

याद रखो—ये नित्य सत्य भगवान् ही आनन्ददाता हैं, आनन्दके केन्द्र हैं, आनन्दमय हैं। इन भगवान्‌की प्राप्ति होती है, इनकी महती कृपासे और वह कृपा सदा सबके अधिकारकी वस्तु है; क्योंकि स्वभावसे ही सर्वसुहृद्‌की वस्तु है। तुम यदि उसको दुर्लभ, अपने अधिकारसे परेकी वस्तु मानोगे, तब तो तुम उससे वंचित ही रहोगे, पर अधिकारकी मानते ही तुम्हारा उसपर अधिकार हो जायगा और वह तुम्हारे सारे दु:ख-क्लेशोंको मिटाकर तुम्हारे हृदयमें परम शान्तिके सुखद अनन्त सागरको लहरा देगी। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

भगवती महालक्ष्मीजी

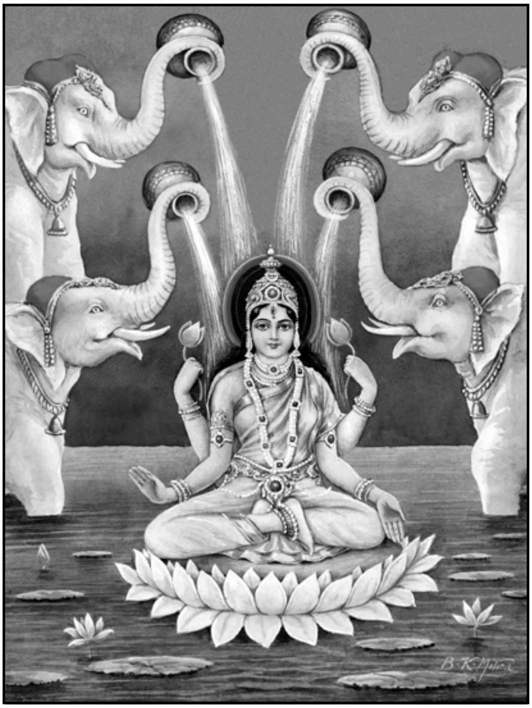

भगवती लक्ष्मीजी विष्णुवल्लभा हैं, वे भगवान् विष्णुसे अभिन्न हैं। उनके विषयमें बताते हुए पराशरजी श्रीमैत्रेयजीसे कहते हैं—हे द्विजश्रेष्ठ! भगवान्‌का कभी संग न छोड़नेवाली जगज्जननी लक्ष्मीजी नित्य हैं और जिस प्रकार श्रीविष्णुभगवान् सर्वव्यापक हैं, वैसे ही ये भी हैं। विष्णु अर्थ हैं तो लक्ष्मीजी वाणी हैं; हरि न्याय हैं तो ये नीति हैं; भगवान् विष्णु बोध हैं तो ये बुद्धि हैं; तथा वे धर्म हैं तो लक्ष्मीजी सत्क्रिया हैं। मैत्रेय! भगवान् जगत्‌के स्रष्टा हैं तो लक्ष्मीजी सृष्टि हैं। भगवान् विष्णु शंकर हैं तो श्रीलक्ष्मीजी गौरी हैं; हे मैत्रेय! पुरुषवाची तत्त्व भगवान् श्रीहरि हैं और स्त्रीवाची तत्त्व श्रीलक्ष्मीजी; इनके परे और कोई नहीं है।

भगवती लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुकी नित्य शक्ति हैं। वे आठों याम भगवान्‌के श्रीचरणोंकी सेवामें लीन रहती हैं। भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब भगवती महालक्ष्मी भी अवतीर्ण होकर उनकी प्रत्येक लीलामें सहयोग देती हैं। इनके आविर्भावके अनेक आख्यान पुराणोंमें आते हैं। एक आख्यानके अनुसार महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे एक त्रिलोकसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थी। इसलिये उसका नाम लक्ष्मी रखा गया। धीरे-धीरे बड़ी होनेपर लक्ष्मीने भगवान् नारायणके गुण-प्रभावका वर्णन सुना। इससे उनका हृदय भगवान्‌में अनुरक्त हो गया। वे भगवान् नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये समुद्रतटपर घोर तपस्या करने लगीं। उन्हें तपस्या करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये। लक्ष्मीजीकी परीक्षा लेनेके लिये देवराज इन्द्र भगवान् विष्णुका रूप धारण करके उनके पास आये और उनसे वर माँगनेके लिये कहा—लक्ष्मीजीने उनसे विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये कहा। इन्द्र वहाँसे लज्जित होकर लौट गये। अन्तमें भगवती लक्ष्मीको कृतार्थ करनेके लिये स्वयं भगवान् विष्णु पधारे। भगवान्‌ने देवीसे वर माँगनेके लिये कहा। उनकी प्रार्थनापर भगवान्‌ने उन्हें विश्वरूपका दर्शन कराया। तदनन्तर लक्ष्मीजीके इच्छानुसार भगवान् विष्णुने उन्हें पत्नीरूपमें स्वीकार किया।

लक्ष्मीजीके प्रकट होनेका दूसरा इतिहास इस प्रकार है—देवगणोंने दैत्योंसे सन्धि करके अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र-मन्थनका कार्य आरम्भ किया। मन्दराचलकी मथानी और वासुकि नागकी रस्सी बनी। भगवान् विष्णु स्वयं कच्छपरूप धारण करके मन्दराचलके आधार बने। इस प्रकार मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे क्रमशः कालकूट विष, कामधेनु, उच्चैःश्रवा नामक अश्व, ऐरावत हाथी, कौस्तुभमणि, कल्पवृक्ष, अप्सराएँ, लक्ष्मी, वारुणी, चन्द्रमा, शंख, शार्ङ्ग धनुष, धन्वन्तरि और अमृत प्रकट हुए। क्षीरसमुद्रसे जब भगवती लक्ष्मी देवी प्रकट हुईं, तब वे खिले हुए श्वेत कमलके आसनपर विराजमान थीं। उनके श्रीअंगोंसे दिव्य कान्ति निकल रही थी। उनके हाथमें कमल था। लक्ष्मीजीका दर्शन करके देवता और महर्षिगण प्रसन्न हो गये। उन्होंने श्रीसूक्तका पाठ करके लक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। सबके देखते-देखते वे भगवान् विष्णुके पास चली गयीं।

पातिव्रत्यकी महिमा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

प्रतिष्ठानपुरमें कौशिक नामक एक ब्राह्मण थे। वे पूर्वजन्ममें किये हुए पापोंके कारण कोढ़के रोगसे व्याकुल रहने लगे। ऐसे घृणित रोगसे युक्त होनेपर भी उनको उनकी पत्नी देवताकी भाँति पूजती थी। वह अपने पतिके पैरोंमें तेल मलती, उनका शरीर दबाती, अपने हाथसे उन्हें नहलाती, कपड़े पहनाती और भोजन कराती थी एवं उनके थूक, खँखार, मल-मूत्र और रक्त भी वह स्वयं ही धोकर साफ करती थी। वह उन्हें मीठी वाणीसे प्रसन्न रखती थी। इस प्रकार अत्यन्त विनीत भावसे वह सदा अपने स्वामीकी सेवा-पूजा किया करती, तो भी अधिक क्रोधी स्वभावके होनेके कारण वे अपनी पत्नीको प्रायः फटकारते ही रहते थे। इतनेपर भी वह उनके पैर पड़ती और उनको देवताके समान समझती थी। यद्यपि उनका शरीर अत्यन्त घृणाके योग्य था, तो भी वह साध्वी उन्हें सबसे श्रेष्ठ मानती थी। कौशिक ब्राह्मणसे चला-फिरा नहीं जाता था, तो भी एक दिन उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—'धर्मज्ञे! उस दिन मैंने घरपर बैठे हुए ही सड़कपर जाती हुई वेश्याको देखा था, उसके घर आज मुझे ले चलो। मुझे उससे मिला दो। वही मेरे हृदयमें बसी हुई है।'

अपने कामातुर स्वामीका यह वचन सुनकर वह पतिव्रता उनको कन्धेपर चढ़ाकर वेश्याके घरकी ओर चली। जब वह राजमार्गसे जा रही थी, तब रात्रिके घोर-अन्धकारमें देख न सकनेके कारण कौशिकने अपने पैरोंसे छूकर मार्गमें स्थित शूलीको हिला दिया। इससे माण्डव्य ऋषिको, जो कि चोर न होते हुए भी चोरके सन्देहसे शूलीपर चढ़ा दिये गये थे, बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने कुपित होकर कहा—'जिसने पैरसे शूलीको हिलाकर मुझे महान् कष्ट दिया है, उस पापात्मा नराधमका सूर्योदय होनेपर विनाश हो जायगा।' इस अति दारुण शापको सुनकर पतिव्रता पत्नी व्यथित होकर बोली—'सूर्यका उदय ही नहीं होगा।' तब सूर्योदय न होनेके कारण बराबर रात ही रहने लगी।

इससे देवताओंको बड़ा भय हुआ। वे आपसमें इस प्रकार बात करने लगे—'सूर्योदय न होनेसे स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा (श्राद्ध) और स्वाहा (यज्ञ)-से रहित होकर यह सारा जगत् नष्ट हुए बिना कैसे रह सकता है। दिन-रातकी व्यवस्था हुए बिना मास, ऋतु, अयन, वर्ष और समयका ज्ञान होना भी असम्भव है। सूर्योदय न होनेके कारण स्नान-दानादि सब क्रियाएँ बन्द हो गयीं, अतः हमलोगोंकी तृप्ति नहीं होती। जब मनुष्य यज्ञमें यथोचित भाग देकर हमें तृप्त करते हैं, तब हम खेतीकी उपजके लिये वर्षा करके मनुष्योंपर अनुग्रह करते हैं। इस प्रकार हम जलकी वर्षासे मनुष्योंको और मनुष्य हविष्यसे हमलोगोंको तृप्त करते हैं। जो दुरात्मा लोभवश हमारा यज्ञभाग स्वयं खा लेते हैं, उन अपकारी पापियोंके नाशके लिये हम जल, अग्नि, वायु तथा पृथ्वी आदिको भी दूषित कर देते हैं। उन दूषित वस्तुओंका उपभोग करनेसे उन कुकर्मियोंकी मृत्युके लिये भयंकर महामारी आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा जो हमें तृप्त करके शेष अन्न अपने उपभोगमें लाते हैं, उन महात्माओंको हम पुण्यलोक प्रदान करते हैं। पर इस समय प्रभातकाल हुए बिना इन मनुष्योंके लिये वह सब पुण्य-कर्म असम्भव हो रहा है। अब सूर्योदय कैसे हो!' इस प्रकार सब देवता आपसमें बात करने लगे।

देवताओंके वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजीने कहा—'महर्षि अत्रिकी पतिव्रता पत्नी तपस्विनी अनसूयाके पास जाओ और सूर्योदयकी कामनासे उन्हें प्रसन्न करो।' तब देवताओंने जाकर अनसूयाजीको प्रसन्न किया। वे बोलीं—'तुम क्या चाहते हो, बतलाओ।' देवताओंने याचना की कि 'पूर्ववत् दिन होने लगे।' अनसूयाने कहा—'देवताओ! पतिव्रताका प्रभाव किसी प्रकार कम नहीं हो सकता, इसलिये मैं उस साध्वीको मनाकर सूर्योदयकी चेष्टा करूँगी।'

यों कहकर अनसूयादेवी उस ब्राह्मणीके पास गयीं और कुशल-प्रश्नके अनन्तर बोलीं—'कल्याणी! पतिकी सेवासे ही मुझे महान् फलकी प्राप्ति हुई है तथा सम्पूर्ण कामनाओं एवं फलोंकी प्राप्तिके साथ ही मेरे सारे विघ्न भी दूर हो गये। साध्वी! मनुष्यको ये पाँच ऋण सदा ही चुकाने चाहिये—अपने वर्णधर्मके अनुसार धनका संग्रह करना, उसके प्राप्त होनेपर शास्त्रविधिके अनुसार उसका सत्पात्रको दान करना, सत्य, सरलता, तपस्या, दान और दया से युक्त रहना, राग-द्वेषका त्याग करना और शास्त्रोक्त कर्मोंका यथाशक्ति प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करना। ऐसा करनेसे मनुष्य उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है। पतिव्रते! इस प्रकार महान् क्लेश उठानेपर पुरुषोंको प्राजापत्य आदि लोकोंकी प्राप्ति होती है, परंतु स्त्रियाँ केवल पतिकी सेवा करनेमात्रसे पुरुषोंके दुःख सहकर उपार्जित किये हुए पुण्यका आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियोंके लिये अलग यज्ञ, श्राद्ध या उपवासका विधान नहीं है। वे पतिकी सेवामात्रसे ही उन अभीष्ट लोकोंको पा लेती हैं। अतः महाभागे! तुम्हें सदा पतिकी सेवामें अपना मन लगाना चाहिये; क्योंकि स्त्रीके लिये पति ही परम गति है।'

अनसूयाजीके वचन सुनकर पतिव्रता ब्राह्मणीने बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया और कहा—'स्वभावतः सबका कल्याण करनेवाली देवी! स्वयं आप यहाँ पधारकर पतिकी सेवामें मेरी पुनः श्रद्धा बढ़ा रही हैं। इससे मैं धन्य हो गयी। यह आपका मुझपर बहुत बड़ा अनुग्रह है। इससे देवताओंने भी यहाँ आकर आज मुझपर कृपादृष्टि की है। मैं जानती हूँ कि स्त्रियोंके लिये पतिके समान दूसरी कोई गति नहीं है। यशस्विनि! पतिके प्रसादसे ही नारी इस लोक और परलोकमें भी सुख पाती है; क्योंकि पति ही नारीका देवता है। महाभागे! आज आप मेरे घर पधारी हैं। मुझसे अथवा मेरे इन पतिदेवसे आपको जो भी कार्य हो, बतानेकी कृपा करें।'

अनसूयाजी बोलीं—'देवि! तुम्हारे वचनसे दिन-रातकी व्यवस्थाका लोप हो जानेके कारण शुभकर्मोंका अनुष्ठान बन्द हो गया है, इसलिये ये इन्द्रादि देवता दुखी होकर मेरे पास आये हैं और प्रार्थना करते हैं कि दिन-रातकी व्यवस्था पहलेकी तरह ही अखण्डरूपसे चलती रहे। मैं इसीके लिये तुम्हारे पास आयी हूँ। मेरी यह बात सुनो। देवि! सूर्यके उदय न होनेसे सम्पूर्ण यज्ञ आदि शुभकर्मोंका नाश हो जायगा और उनके नाशसे देवताओंकी पुष्टि नहीं होगी, जिससे वृष्टिमें बाधा पड़नेके कारण इस संसारका ही उच्छेद हो जायगा। अतः तुम सम्पूर्ण लोकोंपर दया करो, जिससे पहलेकी तरह सूर्योदय हो।'

ब्राह्मणीने कहा—'महाभागे! माण्डव्य ऋषिने अत्यन्त क्रोधमें भरकर मेरे ईश्वररूप स्वामीको शाप दिया है कि तू सूर्योदय होते ही मर जायगा।' अनसूयाजी बोलीं—'यदि तुम्हारी इच्छा हो तो, तुम कहो तो, मैं तुम्हारे पतिको पूर्ववत् शरीर एवं नयी स्वस्थ अवस्थावाला कर दूँगी। मुझे पतिव्रता स्त्रियोंके माहात्म्यका सर्वथा आदर करना है, इसीलिये तुम्हें मनाती हूँ।'

ब्राह्मणीके 'तथास्तु' कहकर स्वीकार करनेपर तपस्विनी अनसूयाने अर्घ्य हाथमें लेकर सूर्यदेवका आवाहन किया। उस समय दस दिनोंके बराबर रात बीत चुकी थी। तदनन्तर भगवान् सूर्यदेव उदित हो गये। सूर्यदेवके प्रकट होते ही ब्राह्मणीका पति प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिरा, किंतु उसकी पत्नीने गिरते समय उसे पकड़ लिया।

अनसूया बोलीं—'तुम विषाद न करना। पतिकी सेवासे जो तपोबल मुझे प्राप्त हुआ है, उसे तुम अभी देखो, विलम्बकी क्या आवश्यकता? मैंने जो रूप, शील, बुद्धि एवं मधुर भाषण आदि सद्गुणोंमें अपने पतिके समान दूसरे किसी पुरुषको कभी नहीं देखा है, तो उस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगसे मुक्त हो फिरसे तरुण हो जाय और अपनी स्त्रीके साथ सौ वर्षोंतक जीवित रहे।'

अनसूयादेवीके इतना कहते ही वह ब्राह्मण अपनी प्रभासे उस भवनको प्रकाशमान करता हुआ रोगमुक्त होकर तरुण शरीरसे जीवित हो उठा, मानो जरावस्थासे रहित देवता हो। तत्पश्चात् देवताओंके दुन्दुभि आदि बाजोंकी आवाजके साथ वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी। देवताओंको बड़ा आनन्द मिला। वे अनसूयादेवीसे कहने लगे—'आपने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य किया है।

इससे प्रसन्न होकर देवता आपको वर देना चाहते हैं। आप कोई वर माँगें।' अनसूया बोलीं—'यदि ब्रह्मा आदि देवता मुझपर प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं तो मेरी यही इच्छा है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हों तथा अपने स्वामीके साथ मैं उस योगको प्राप्त करूँ, जो समस्त क्लेशोंसे मुक्ति देनेवाला है।'

यह सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने 'एवमस्तु' कहा और तपस्विनी अनसूयाका सम्मान करके वे सब अपने-अपने धामको चले गये।

तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेके बाद अनसूयाके तीन पुत्र हुए। ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय और शंकरके अंशसे दुर्वासा हुए।

पतिव्रता ब्राह्मणीकी यह कथा मार्कण्डेयपुराणमें विस्तारसे वर्णित है।

श्रीरामचरितमानसमें श्रीभरतजीकी अनन्त महिमा

(साकेतवासी श्रद्धेय श्रीकृपाशंकरजी 'रामायणी')

आज श्रीअवधके प्रत्येक नर-नारियोंकी म्लान मुखश्री देदीप्यमान हो उठी है। प्रत्येकके हृदयमें आशाकी सुवर्णमयी किरणें चमक उठी हैं। सभी विभिन्न कार्योंमें संलग्न हैं। कोई हस्तियोंके पृष्ठभागपर मनोरम कनकमय हौदे सुसज्जित कर रहे हैं। कोई जीन रच-रचके चपल तुरंगोंको सुशोभित कर रहे हैं। इसी प्रकार नगरके गृह-गृहमें जनसमुदाय नाना प्रकारके वाहनोंको समुद्यत कर रहा है। सब-के-सब श्रीराघवेन्द्र सरकारके चरणकमलकी संनिधि प्राप्त करनेकी त्वरामें हैं। श्रीभरतलालकी सराहना करनेके साथ-साथ नागरिक परस्परमें कहते हैं कि आज बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न हो गया—

कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू॥

इधर श्रीभरतलालने विश्वासपात्र अनुचरोंको नगर सौंपकर श्रीवसिष्ठको, विप्रवृन्दको, श्रीकौसल्यादि माताओंको, श्रीरामप्रेमोन्मत्त नागरिकोंको आदरपूर्वक प्रस्थान कराकर श्रीसीतारामजीके मंगलमय चरणसरसिजोंका स्मरण करके श्रीरघुनाथपददर्शनार्थ प्रस्थान किया—

सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ॥

आज श्रीभरतलालकी काननयात्राका चतुर्थ दिवस है—शृंगवेरपुर दिखायी पड़ रहा है। किंचित् दिवस पूर्व श्रीराघव भी यहाँ एक रात्रि विश्राम कर चुके हैं। श्रीनिषादराजने प्रभुकी सम्पूर्ण सेवा की थी। परंतु आज श्रीभरतका आगमन सुनकर वे ही श्रीरामसखा निषादराज श्रीभरतके लिये स्वागत-सामग्रियोंका संकलन नहीं कर रहे हैं। वे उनसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित नहीं हो रहे हैं। अपितु इन सब क्रियाओंके प्रतिकूल कटकसहित श्रीभरतका आगमन सुनकर श्रीनिषादराजको अपने प्रेमास्पद श्रीराघवके अनिष्टकी आशंका हुई और वे लगे सविषाद विचार करने—

कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं॥
जौं पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई॥
जानहिं सानुज रामहि मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी॥

श्रीरामके वनगमनमें तो कारण था, परंतु श्रीभरतके काननगमनमें क्या कारण है? कारणरहित कार्य नहीं होता। अवश्य ही इनके मनमें कुछ कपट-भाव है। यदि श्रीभरतके मनमें कुटिल भावना न होती तो साथमें कटक लेनेकी क्या आवश्यकता थी? साथमें कटक लेना ही कुटिलताका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अवश्य ही चौदह वर्षके वनवाससे इनको सन्तोष नहीं प्राप्त हो सका। वे यह समझ रहे हैं कि राज्यपथमें कंटकस्वरूप श्रीराम-लक्ष्मणको सर्वदाके लिये दूर हटाकर सानन्द राज्य-सुखका उपभोग करेंगे।

श्रीनिषादराजने केवल विचार ही नहीं किया, अपितु वे भी श्रीभरतसे समर करनेके लिये संनद्ध हो गये—

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥

श्रीभरतके साथ प्रत्यक्ष लोहा मैं लूँगा और जीते जी गंगा उतरने न दूँगा।

केवल श्रीनिषादराज ही समरोद्यत नहीं हुए, अपितु

उनकी समस्त सेना भी अपने स्वामीके साथ श्रीरामकार्यमें अपने प्राणोंका बलिदान करनेको कटिबद्ध हो गयी। श्रीगुहराजकी ललकार सुनकर वीर सुभटोंने रोषपूर्वक जिन शब्दोंको वदनच्युत किया है, वे शब्द कितने ओजस्वी हैं—

राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे।
जीवत पाउ न पाछें धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं॥

नाथ! श्रीराघवेन्द्रके प्रचण्ड प्रतापसे एवं आपके बलसे हमलोग श्रीभरतकी सेनामें एक भी योद्धा तथा एक भी अश्व जीता न छोड़ेंगे। विश्वकी कोई भी शक्ति हमलोगोंको निष्प्राण किये बिना आगे बढ़नेमें नितान्त असमर्थ होगी। हम भगवती वसुन्धराको रुण्ड-मुण्डसे आच्छादित कर देंगे।

देखा आपने श्रीभरतलालके प्रति गुहराज एवं उनके सुभटोंके द्वारा की गयी कुत्सित धारणाको—

यद्यपि यह ठीक है कि श्रीरामसखा निषादराज एवं उनके सम्पूर्ण सुभट श्रीरामके अनन्य प्रेमी थे। उनका प्रेम तो उनके वचनोंसे और उनकी क्रियाओंसे ही स्पष्ट है। श्रीगुहराजके कितने मार्मिक, उपदेशपूर्ण और श्रीरामभक्तिसे ओतप्रोत ये वचन हैं—

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू। बड़ें भाग असि पाइअ मीचू॥
स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दस चारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें॥
साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू॥

श्रीगुहराज श्रीभरतसे समरांगणमें समर करके विजय-प्राप्तिका ध्यान भी मनमें नहीं लाते; वे तो यह समझते हैं कि भरतसे युद्ध करनेमें मेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है। किंतु मेरी मृत्यु भाग्यवान्‌की मृत्यु होगी; क्योंकि युद्ध-भूमिमें मरनेसे वीरगति प्राप्त होती है। दूसरी बात यह है कि लोकपावनी गंगाके पवित्र तटपर मेरी मृत्यु होगी। तीसरे, क्षणभरमें विनष्ट हो जानेवाला यह शरीर श्रीराघवेन्द्र सरकारके कार्यमें आ जायगा। इससे अच्छा और क्या होगा? कहाँ तो श्रीरामके भ्राता भरत और कहाँ मैं नीच जन; फिर श्रीभरत नरेन्द्र भी तो हैं? बड़े भाग्यसे ऐसी मृत्यु मिलती है। मैं अपने राघव सरकारके लिये समरभूमिमें युद्ध करूँगा और अपने यशसे चौदहों लोकोंको धवलित कर दूँगा। श्रीरघुनाथजीके निमित्त प्राणत्याग करूँगा। मेरे दोनों हाथोंमें आनन्दके मोदक हैं। अर्थात् मेरा लोक-परलोक दोनों सुधर जायगा। सज्जनोंके समाजमें जिनकी गणना न हो और श्रीरामभक्तोंमें जिसकी रेखा न हो, वह इस जगत्‌में व्यर्थ जीता है। वह पृथ्वीपर भारस्वरूप है और उसके उत्पन्न होनेसे उसकी माँका यौवन अकारण ही नष्ट हुआ। अस्तु!

श्रीगुहराजके भक्त सुभटोंकी भी कितनी भक्तिभरी उक्ति है। श्रीरामके प्रतापमें उनका कितना अटूट विश्वास है। वे पृथ्वीको रुण्ड-मुण्डमय बना देनेकी प्रतिज्ञा करते हैं, किंतु यदि उनसे पूछा जाय कि तुममें क्या इतनी प्रचण्ड शक्ति विद्यमान है कि तुम ऐसा विकराल कार्य कर सको? तो वे कहते हैं, ना भैया ना! मुझमें इतनी शक्ति कहाँ, जो मैं तिनका भी उठा सकूँ? इस कार्यके सम्पन्न होनेमें तो श्रीरामचन्द्रका प्रताप ही मुख्य निमित्त होगा—

राम प्रताप नाथ बल तोरे।

अहा! कितनी उत्कृष्ट भावना है! श्रीरामप्रतापमें कितनी अविचल श्रद्धा है!

श्रीगुहराजने श्रीभरतके प्रत्यक्ष समरांगणमें अपनेको उपस्थित करनेका विचार किया, परंतु शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होनेके पूर्व श्रीराघवेन्द्रका ही मंगलमय स्मरण करते दीख रहे हैं—

सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु।

श्रीनिषादराजके भक्त सुभटगण भी शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होनेके पूर्व कितना सुन्दर स्मरण करते हैं—

सुमिरि राम पद पंकज पनहीं।

विशेष—वीर सुभटोंने धनुष, तरकस, कवच, शिरस्त्राण, परशु, भाले, बरछे और तलवार आदि सभी युद्धोचित सामग्रियोंका संकलन किया एवं सभी शस्त्रास्त्रोंसे अपने शरीरको सुसज्जित किया, परंतु यह क्या? युद्धका एक प्रधान अस्त्र दिखायी नहीं पड़ता, जिसके अभावमें प्रचण्ड आघातसे अपनेको सुरक्षित रखना असम्भव नहीं

तो दु:साध्य अवश्य होता है। उस अस्त्रका नाम है 'चर्म' अर्थात् 'ढाल'। कुछ महानुभाव ***'एक कुसल अति ओड़न खांड़े'*** के 'ओड़न' शब्दको 'ढाल'के अर्थमें प्रयुक्त करते हैं। कुछ विद्वान् समालोचक यह कह दिया करते हैं कि वे सुभटगण तलवारके आघातको अवरुद्ध करनेमें इतने समर्थ थे कि उन्हें ढालकी आवश्यकता ही न थी। इसी प्रकार अनेक संतोंकी अनेकानेक विचारधाराएँ हैं। मैं सबका सम्मान करता हूँ। परंतु मेरे परमपूज्य आदरणीय श्रीमहाराजजी कहा करते थे कि सुभटोंने इस परमावश्यक अस्त्रसे अपनेको सर्वप्रथम सुसज्जित किया था। इनकी 'ढाल' बड़ी विशाल थी। जिस ढालके ऊपर विश्वके बड़े-बड़े अस्त्र टकराकर उसी भाँति निष्फल सिद्ध होते हैं, जिस भाँति पादपोन्मूलनकी शक्तिवाला वायुका वेग पर्वतोन्मूलनमें व्यर्थ सिद्ध होता है। वह 'ढाल' थी श्रीराघवेन्द्र सरकारके चरणसरसिजोंकी मंगलमयी 'पनहीं'। कितनी सुन्दर ढाल है। 'ढाल'को भी 'चर्म' कहते हैं। 'पनहीं' भी चर्मकी ही होती है।

हाँ, तो मैं कह रहा था कि यद्यपि श्रीनिषादराज एवं उनके वीर सुभट श्रीरामके अनन्य प्रेमी थे, परंतु विचारना तो यह है कि श्रीभरतलालके भावको उन्होंने कितना विपरीत समझा। जिन श्रीभरतके रोम-रोममें श्रीराम रम रहे थे, जिनका जीवन ही अपने श्रीरामके लिये था, जिन्हें अहर्निश अपने प्रेमास्पद श्रीरामकी ही याद रहती थी, जिन्होंने देवदुर्लभ अवधराज्यका परित्यागकर अपने श्रीराघवके लिये मुनिवेष धारण किया था, उन श्रीभरतके प्रति इनकी की गयी धारणा कितनी कुत्सित धारणा थी। यह भी ठीक है कि निषादगणसहित निषादराज अपने श्रीरामके लिये प्राणोत्सर्ग करनेको उद्यत हैं; परंतु विचारना तो यह है कि क्या श्रीभरत भी उनके प्राण लेनेकी धारणा करते हैं? ध्यानसे मनन करें कि आज परिस्थिति श्रीभरतके कितनी प्रतिकूल है। आज उनके प्रेमी हृदयको वनकी रहनेवाली जाति भी कपटमय समझ रही है। परंतु श्रीभरतके लिये तो श्रीनिषाद, श्रीरामके मंगलमय सखा हैं। सखाकी श्रेणी समानताकी है। अतएव श्रीभरतके हृदयमें इनके लिये महान् आदर है।

श्रीनिषादनाथने वीरोंके सुसज्जित दलको देखकर समरवाद्य वादित करनेकी आज्ञा दे दी। वीरोंमें उमंग भी थी। श्रीराम-कार्यके लिये बलिदान हो जानेका उत्साह भी था। श्रीनिषादनाथकी आज्ञा भी थी। परंतु युद्ध नहीं हुआ। सम्पूर्ण वीरसेना चित्र लिखी-सी खड़ी रह गयी। आगे बढ़ भी कैसे सकती थी? इन लोगोंने श्रीराघवेन्द्रके लोकोपकारक मनोहर चरणोंमें ध्यान जो लगाया था। श्रीरामचन्द्रजी मर्यादापुरुषोत्तम हैं। उनके स्मरणके पश्चात् भी दो श्रीरामभक्तोंका पारस्परिक संग्राम कैसे हो सकता था? क्योंकि यह कार्य अमर्यादित होता। श्रीरामके प्रतापका स्मरण करके कोई श्रीरामभक्त, श्रीरामप्राणप्रिय, श्रीरामप्रेमास्पद श्रीभरतलालके साथ विरोध-जैसा जघन्य कार्य कर भी कैसे सकता था? अतएव 'जुझाऊ ढोल' सुवादित करनेकी आज्ञा देनेके साथ-साथ श्रीनिषादनाथको शकुन-विचारकर्ताओंकी शरण लेनी पड़ी।

एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए।

सगुन-विचारकर्ताने छींकका फल बताया—

बूढ़ु एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी॥
रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं॥

एक बूढ़ेने शकुन विचारकर कहा कि भरतजीसे मिलाप होगा, उनसे मिलिये, युद्ध न होगा। श्रीभरत श्रीरामचन्द्रको मनाने जाते हैं। शकुन ऐसा कह रहा है, अर्थात् हम अपने मनसे नहीं कहते, शकुन ही ऐसा बता रहा है कि श्रीभरतके मनमें विरोधभाव नहीं है।

शकुनफलश्रवणानन्तर भी परीक्षक गुहराजकी आशंका दूर न हुई। उन्होंने प्रेममय श्रीभरतलालको निष्कपट न माना। वे परीक्षा लेनेकी भावनाका परित्याग न कर सके। उन्होंने अपने वीरोंको सम्बोधित करते हुए अपनी भावनाको व्यक्त किया—

गहहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहउँ आइ॥

सबलोग सिमिटकर घाटको रोकनेका ठाट ठटो। मैं जाकर श्रीभरतसे मिलकर उनका भेद लूँ कि श्रीराघवेन्द्रके प्रति इनके मनमें विरोधभाव है या मित्रभाव है अथवा

समानभाव है। श्रीनिषादने परीक्षण-सामग्रियोंका संकलन किया और विधिवत् संकलन किया। उनकी परीक्षण सामग्रियाँ थीं भेंट-सामग्री। उन्होंने तीन प्रकारकी भेंटें एकत्रित कीं। ये तीनों प्रकारकी सामग्रियाँ भावपूर्ण सामग्रियाँ थीं और क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी द्योतिका थीं। पाठक सामग्रियोंपर ध्यान दें—

अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग मागे॥
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥

श्रीनिषादराज भेंटका साज सजाने लगे। कन्द, मूल, फल, पक्षी और मृग मँगाये और कहार मोटी तथा पुरानी पहिना मछलियोंके भार भर-भरकर लाये।

विशेष—श्रीनिषादनाथ गुह भी बड़े अच्छे राजनीतिज्ञ थे। मित्र, शत्रु, मध्यगति-परीक्षणकी कितनी विचित्र युक्ति है? भेंटसे राजाके प्रति अपने कर्तव्यका निर्वाह भी हुआ; क्योंकि '**रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं भिषजं गुरुम्**' और उधर राजनीतिकी चाल भी चली गयी कि यदि श्रीरामके प्रति मित्रभावना होगी तो सत्त्वगुणी पदार्थ कन्द-मूल-फल स्वीकार करेंगे; क्योंकि सत्त्वगुणी प्रकृतिवाले व्यक्ति कन्द-मूल-फल ही रुचिपूर्वक ग्रहण करते हैं। सम्भवतः मुनिसमूह कन्द-मूल-फलसे प्रेम इसीलिये करते हैं। यदि अरिभावना होगी तो रजोगुण पदार्थ खग-मृग स्वीकार करेंगे; क्योंकि रजोगुणी प्रकृतिवाले व्यक्तियोंका खग-मृगकी ओर झुकाव स्वाभाविक ही है। इसीलिये राजाओंके राजोद्यानमें खग-मृगकी बहुलता रहती है। यदि उदासीनता होगी तो तमोगुणी पदार्थ मीन-पीन-पाठीन पुराने स्वीकार करेंगे; क्योंकि घोर तामसिकोंका आहार है ***'मीन पीन पाठीन पुराने।'*** सच्छास्त्रोंने मत्स्य-मांसको गर्हित बताया है। '**मत्स्यादः सर्वमांसादः।**' अस्तु—

श्रीनिषादनाथने मिलन-वस्तुओंको सजाकर मिलनेके लिये प्रस्थान किया तथा श्रीवसिष्ठजीको देखकर दूरसे ही शिष्टाचारपूर्वक दण्ड-प्रणाम करके आशीर्वचन प्राप्त किये।

आइये, श्रीभरतलालकी अनुरागमयी भावनाकी एक झाँकी करें।

श्रीवसिष्ठजीने श्रीभरतलालको समझाकर कहा कि यह उपस्थित हुआ व्यक्ति श्रीरामसखा गुह है। 'रामसखा' इस शब्दको सुनते ही श्रीभरत पुलकित हो उठे। उन्होंने रथका परित्याग कर दिया और प्रेममें उमँगते हुए निषादकी ओर चल पड़े—

रामसखा सुनि संदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥

श्रीनिषादको दण्डवत् करते देखकर श्रीभरतने उठाकर उनको हृदयसे लगा लिया, मानो श्रीलक्ष्मण मिल गये हों। हृदयमें प्रेम अँटता नहीं—

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ॥

श्रीभरतलालकी भावनासे भावित होकर भूतलकी तो बात ही क्या, अन्तरिक्ष भी आनन्दमय हो गया। देवगण श्रीनिषादके भाग्यकी सराहना करके पुष्प-वृष्टि करने लगे—

धन्य धन्य धुनि मंगल मूला। सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला॥

जनसमुदाय ईर्ष्यापूर्वक श्रीभरत-प्रीति-रीतिकी प्रशंसा कर रहा है—

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥

श्रीभरतके निष्कपट प्रेमालिंगनको प्राप्तकर श्रीनिषादराज प्रेममय हो गये। क्यों न होते? प्रेमीका मिलन होता ही ऐसा है। तभी तो प्रेमियोंसे मिलनेके लिये प्रभु भी उतावले रहते हैं। श्रीनिषाद श्रीभरतमिलनसे तो केवल प्रेममय ही हुए थे, किंतु भरतकी अनुरागसानी वाणी सुनकर तो भूल गये अपने-आपको एवं संकलन की हुई परीक्षण-सामग्रियोंके अर्पित करनेकी सुधिको—

राम सखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूँछी कुसल सुमंगल खेमा॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥

धन्य है श्रीभरतलालकी प्रेममयी वाणी एवं भावनाको तथा उनके सौशील्यको। जिसके कारण श्रीभरतको कपटी एवं कुटिल समझकर परीक्षा लेनेकी भावनासे आये हुए निषादराज भी श्रीभरतलालकी शील, स्नेह और त्यागमयी त्रिवेणीमें डूब गये।

दीन-दुखियोंके प्रति कर्तव्य

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान् आर्तिहरण हैं। वे दीनोंकी आर्ति हरण करनेवाले हैं। भगवान् दीनबन्धु हैं, दीनोंके सहज मित्र हैं। दीनका अर्थ है—असमर्थ, अशक्त, जिसमें कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं, जिसके पास कोई साधन नहीं, जो शक्तिहीन, सामग्रीहीन और सर्वथा निर्बल है—ऐसा जो कोई होता है, उसके हृदयकी पुकार स्वाभाविक ही दीनबन्धुके लिये होती है। दीनको कौन अपनाये? संसारमें दीनोंके साथ सहज, सरल प्रेम करनेवाले, उनका समादर करनेवाले, उन्हें अपनानेवाले वस्तुत: दो ही हैं—एक भगवान् और दूसरे संत। यह दीनबन्धुत्व, दीनवत्सलता, अकिंचनप्रियता, दीनप्रियता भगवान् और संतमें ही है। यह परम आदर्श गुण है। इसका यदि किसीके जीवनमें समावेश हो जाय तो उसका जीवन धन्य हो जाय। इसमें एक विशेष बात यह है, जैसे माता संतानवत्सला होती है और वह अपने मनमें कभी भी अहंकार नहीं करती कि मैं संतानका उपकार करती हूँ, उसका वात्सल्य उसे संतानकी सेवा करनेके लिये बाध्य करता है। इस मातृवात्सल्यपर संतानका सहज अधिकार है। माताकी वह वत्सलता संतानकी सम्पत्ति है। उसकी वह वत्सलता संतानके लिये ही है, नहीं तो उसकी कोई सार्थकता नहीं। इसी प्रकार दीनोंके प्रति, अनाथोंके प्रति, दुखियोंके प्रति जो संतोंकी, भगवान्‌की सहज दयापूर्ण वत्सलता है; वह अनाथों, अनाश्रितों, दीनों, दुखियों और असहायोंकी सम्पत्ति है। दीनोंके प्रति सहज वत्सलता रखनेवाले पुरुषोंका यह स्वभाव होता है। यह सहज भाव सदा उनके हृदयमें रहता है। वे यह नहीं मानते कि हम किसीका उपकार कर रहे हैं। वे नहीं मानते कि हम दया करके किसी 'दीन'—दयाके पात्रको कुछ दे रहे हैं। वे अपना कुछ मानते ही नहीं। वे समझते हैं, हमारा कुछ है ही नहीं। जो कुछ है, सब भगवान्‌का है। विद्या, बुद्धि, बल, धन, सम्पत्ति, जमीन, मकान जो कुछ है, सारा-का-सारा भगवान्‌का है। इसलिये उसका यथायोग्य निरन्तर भगवान्‌की सेवामें, भगवान्‌के काममें लगाते रहना, यह उनका स्वभाव होता है। अत: उनकी दीनवत्सलता, किसी दीनका उपकार नहीं, भगवान्‌की सेवा है। भगवान्‌की अपनी वस्तु, भगवान्‌को समर्पण करनेका भाव है। इस भावके विपरीत जो इन सब वस्तुओंका संग्रह करता है, जो उन्हें अपनी वस्तु मानता है, उनपर अपना स्वामित्व, अपना अधिकार मानता है, भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌को देता नहीं, वह चोर है। भगवान्‌की चीजपर अपना स्वत्व मानकर जो सब-कुछको अपना मान बैठता है, केवल अपने ही उपयोगमें लेने लगता है, वह चोर है, दण्डका पात्र है। भागवत (७।१४।८)-में देवर्षि नारदजीने कहा है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

'जितनेसे पेटभरे—सादगीसे जीवन-निर्वाह हो, उतनेपर ही अधिकार है। जो उससे अधिकपर अपना अधिकार मानता है, संग्रह करता है, वह दूसरोंके धनपर अधिकार मानने-वालेकी तरह चोर है और दण्डका पात्र है।' इस भावसे अपनी सारी, सब प्रकारकी सम्पत्तिपर, सबका—विश्वरूप भगवान्‌का अधिकार मानकर—जहाँ-जहाँ दीन हैं, जहाँ-जहाँ गरीब हैं, जहाँ-जहाँ अभावग्रस्त हैं, असमर्थ हैं, वहाँ-वहाँ, तत्तत् उपयोगी सामग्रीके द्वारा उनकी सेवामें लगे रहना धर्म है।

मनुष्यके व्यवहारमें—मानव-जीवनमें एक बात अवश्य आ जानी चाहिये। वह यह कि अपने पास विद्या, बुद्धि, धन, सम्पत्ति, भूमि, भवन, तन, मन, इन्द्रिय जो कुछ हैं, उनसे जहाँ-जहाँ अभावकी पूर्ति होती हो, वहाँ-वहाँ उन्हें लगाता रहे, यही पुण्य है—सत्कर्म है। पर जहाँ स्वयं संग्रह करनेकी प्रवृत्ति होती है, इकट्ठा करके मालिकी करनेकी आकांक्षा रहती है, संसारकी वस्तुओंको एकत्र करके उन्हें अपना बना लेनेकी वृत्ति, इच्छा या चेष्टा होती है, वहाँ पाप है। अपरिग्रह पुण्य है और परिग्रह पाप है।

हमारा स्वभाव बन जाना चाहिये कि हम अपनी परिस्थितिका, प्राप्त सामग्रीका, साधनोंका सदुपयोग करना सीख जायँ। एकत्रित सम्पत्ति केवल भोगोंमें लगाने या रख छोड़नेके लिये नहीं है। पानी जहाँ एक जगह पड़ा रह जायगा, गंदा हो जायगा, उसमें कीड़े पड़ जायँगे। इसी प्रकार उपयोगरहित सामग्री भी गन्दी हो जाती है। मांस ही अभक्ष्य नहीं है, दूसरेका हक खा जाना भी अभक्ष्य-भक्षण है। किसी प्रकार भी दूसरेके हकपर अधिकार जमाना पाप है। एक राजाके यहाँ एक महात्मा आये। प्रसंगवश बात चली हककी रोटीकी।

राजाने पूछा—'महाराज! हककी रोटी कैसी होती है?'

महात्माने बतलाया कि 'आपके नगरमें एक बुढ़िया रहती है। जाकर उससे पूछना चाहिये।' राजा बुढ़ियाके पास आये और पूछा—'माता! मुझे हककी रोटी चाहिये।'

बुढ़ियाने कहा—'राजन्! मेरे पास एक रोटी है, पर उसमें आधी हककी है और आधी बेहककी।' राजाने पूछा—'आधी बेहककी कैसे?' बुढ़ियाने बताया कि 'एक दिन मैं चरखा कात रही थी। शामका वक्त था। अँधेरा हो चला था। इतनेमें उधरसे एक जुलूस निकला। उसमें मशालें जल रही थीं। मैंने चिराग न जलाकर उन मशालोंकी रोशनीमें आधी पूनी कात ली। उस पूनीसे आटा लाकर रोटी बनायी। अतएव आधी रोटी तो हककी है और आधी बेहककी। इस आधीपर उस जुलूसवालेका हक है।'

यहाँतक हकका खयाल था। किसीके हककी चीज जरा भी हमारे घरमें न आ जाय। इसे लोग बड़ा पाप मानते थे। यदि किसीके हककी चीज हमारे घरमें आ गयी और हमने खा लिया, तो हमने चोरी की, पाप किया।

आजकल इस हकका कोई ध्यान नहीं है। लोग चाहे जैसे सम्पत्ति-संग्रह करते हैं और उसपर अपना सहज स्वत्व मान रहे हैं, दूसरेका हक मानते ही नहीं। ऐसा करनेवाले सर्वथा पाप ही कर रहे हैं। एक साधुने मुझसे कहा, 'आजकल हम किसकी रोटी खायँ। सच्चा ईमानदार कौन है?' जैसा खाते हैं अन्न, वैसा बनता है मन। अन्नके अनुसार ही मनका निर्माण होता है। जैसी कमाई होती है, वैसा ही अन्न होता है। कमाईका अन्नपर बहुत प्रभाव पड़ता है। वैसे तो शुद्ध सात्त्विक वस्तु, सात्त्विक शुद्ध स्थानमें बनायी गयी हो, शुद्ध पुरुषोंके द्वारा परसी गयी हो, वह शुद्ध है। शुद्ध स्थान और स्पर्श आदि सब इसमें कारण हैं। परंतु मूलत: एक चीज है, जिससे सारी शुद्धि होनेपर भी वस्तुमें बड़ी अपवित्रता रह जाती है। वह है धनकी अशुद्धि। चोरीके, असत् कमाईके धनसे प्राप्त अन्न सदा अपवित्र रहता है। इसी प्रकार पवित्रता भी उसीपर निर्भर है। अत: यह समझना चाहिये कि जिसके पास जो कुछ है, वह सब-का-सब परार्थ है। अर्थात् वह सबका मिला हुआ धन है। उसमें सबका भाग है। वह सबका है। मेरा नहीं है। जहाँ-जहाँ उसकी आवश्यकता हो, वहाँ-वहाँ सम्मान, श्रद्धा, सद्भाव, उदारता, सदाशयता एवं समादरके साथ उसका उपयोग करना कर्तव्य है। किसी आदमीको आप कुछ अधिक भी दे दें, एक रुपयेकी जगह पाँच रुपये भी दे दें, पर उसे झिड़ककर अपमानित करके दें, तो उससे उसका मन सुखी नहीं होगा, संतुष्ट नहीं होगा। विनम्र और मधुर वाणीकी बहुत आवश्यकता है। वही बोली है, जिससे आप हर किसीके हृदय-कमलको प्रफुल्लित कर सकते हैं। वाणीकी कठोरतासे आप हर किसीको पीड़ित भी कर सकते हैं। अपमानभरी, उपेक्षाभरी, घृणाभरी कटूक्तियोंकी जितनी तीखी चोट दीन पुरुषके मनपर जाकर लगती है, उतनी सम्पन्नके नहीं लगती। किसी पहलवानको आप घूसा लगायें, जो पूर्ण स्वस्थ है, सबल मांसपेशियाँ हैं जिसकी; पहले तो उसे आप घूसा लगानेका साहस ही नहीं करेंगे और कहीं आपने लगाया तो तत्काल ही आपको दुगुने वेगसे उत्तर मिल सकता है। पर आपके घूसेका उसे पता नहीं चलेगा। वह उसे सह लेगा; किंतु यदि किसी दुर्बलको आपने घूसा लगा दिया, तो वह बेचारा वहीं तलमला जायगा, ऐंठ जायगा, पीड़ित हो जायगा।

किसी बड़े आदमीको आपने कुछ कहा भी तो वह उधर ध्यान नहीं देगा, सुनेगा ही नहीं, क्योंकि उसकी तारीफ करनेवाले बहुत लोग हैं। तारीफके नगाड़ोंमें आपकी निन्दाकी क्षीण ध्वनि सुनायी ही नहीं देगी। किंतु वही बात आप किसी गरीबको कह देंगे तो उसके कलेजेमें चुभ जायगी। वह मर्माहत हो जायगा। इसीलिये ***'बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥'*** कहा है। विपत्तिकालमें सौगुना स्नेह करे, तब वह एकगुनाके बराबर होता है। दीनकी विपत्ति उसपर इतनी लद जाती है कि वह उससे दब जाता है। उसका अन्तर रात-दिन रोता रहता है। उसके अन्तरमें आँसुओंकी धारा बहती रहती है और वह उसे प्रकट नहीं कर पाता। छिपाये रहता है। कभी-कभी वह चुपचाप कराह भी लेता है। रो भी लेता है। और लोगोंकी झिड़कियोंके, अपमानके डरसे वह अपने दु:खको प्रकट नहीं करता। उसका स्वभाव बदल जाता है; क्योंकि उसकी सुननेवाला संसारमें कोई नहीं है। यह बात उसके मनमें बैठ जाती है। अतएव जो उसके आँसू पोंछ सके, उसके साथ सहानुभूति दिखा सके, समवेदना रख सके, वही सदाशय है। गरीबकी सुने, दीनकी सुने, अनाथकी सुने और उसके अन्तरकी पीड़ाको यथाशक्ति दूर करनेका प्रयत्न करे—वही मनुष्य है।

धर्म और सम्प्रदाय

(ब्रह्मचारिणी सुश्री प्रज्ञाजी)

धर्म—मनुष्यका यथार्थ स्वरूप 'आत्मा' है न कि शरीर, जो प्रत्येक जन्ममें बदलता रहता है और यह आत्मा उस अविनाशी परमात्माका अंश है, जो परमात्मा अनन्त अलौकिक गुणोंका भण्डार है। परमात्माका अंश होनेके कारण जो गुण परमात्मामें हैं, वे समस्त अलौकिक गुण आत्मामें भी उसी प्रकार विद्यमान हैं, जिस प्रकार सूर्यके गुण उसकी एक किरणमें भी होते हैं या अग्निके गुण उसकी एक चिंगारीमें भी होते हैं। आत्माको जानकर आत्मामें स्थित होकर आत्माके ही गुणोंमें बरतना—यही सद्धर्म है, यही शाश्वत धर्म है, यही मानव धर्म है और यह सभी मनुष्योंके लिये समान है, चाहे वे किसी भी देश, भाषा, जातिके हों और किसी भी मत या पन्थके माननेवाले हों।

परमात्मा और धर्म कोई अलग वस्तु नहीं। परमात्मा ही धर्म हैं, धर्म ही परमात्मा है।

परमात्मप्राप्तिकी व्याकुलतामें मुमुक्षु जीव जब तीव्र वैराग्यका आश्रय लेकर तपश्चरणमें लीन हो जाता है, तब परमकृपालु परमात्मा स्वयं उसे हृदयसे लगानेके लिये आतुर हो जाता है और उसे मल-विक्षेप-आवरणादिसे मुक्तकर विशुद्ध आत्मरूप प्रदान करता है, ताकि अंश-अंशीका मिलन सुगम हो सके। समस्त मिथ्या-बन्धनोंसे मुक्त हुआ वह शुद्धात्मा उसी तरह उस परमदेव परमात्माके अंकमें चला जाता है, जिस तरह बहती हुई नदियाँ अपना-अपना नाम-रूप त्यागकर समुद्रमें विलीन हो जाती हैं। यही परमात्मप्राप्ति है। परमात्माको पाकर आत्मा भी परमात्मस्वरूप हो जाता है (**ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति**)। परमात्मस्वरूप हो जाना ही धर्मरूप हो जाना है। यही धर्मोपलब्धि है। यही धर्ममें स्थित होना है। जगत्के जीवोंको धर्मका यथार्थ ज्ञान देनेके लिये ही परमात्मा ऐसी दिव्य आत्माओंको अपने दिव्य अलौकिक गुणोंसे युक्त करके पुनः शरीरकी कोषगत अवस्थाओंमें वापस भेजता है, अन्यथा आत्माका परमात्मामें विलय होनेके पश्चात् शरीरका निश्चेष्ट हो जाना सुनिश्चित है।

धर्मका ज्ञान बुद्धिका विषय नहीं है। बुद्धिसे धर्मके बारेमें या धर्माचरणके बारेमें कुछ ही अंशोंमें जाना जा सकता है और वह भी तभी सम्भव है, जब बुद्धि सात्त्विक हो। राजसी और तामसी बुद्धिके लिये तो यह भी सम्भव नहीं है, यह बात गीतामें स्पष्ट लिखी हुई है—

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥

और

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(गीता १८। ३१-३२)

राजसी बुद्धि धर्म-अधर्मको अयथार्थरूपमें जानती है और तामसी बुद्धि तो दुराग्रहपूर्वक अधर्मको ही धर्म मानती है।

धर्मको यथार्थरूपमें जाननेके कारण या धर्मका अर्थ सुविधापूर्वक अपनी-अपनी वृत्तिके अनुसार करनेके कारण ही आजतक धर्मके नामपर इतने विद्वेष, विध्वंस, हिंसाचार और रक्तपात होते रहे हैं। धर्म तो शान्ति, प्रेम, सन्तोष और सौहार्दका विस्तार करनेवाली परम पवित्र वस्तु है। धर्मको अनर्थका कारण बताना तो ऐसा ही है, जैसे पारस पत्थरको दरिद्रताका कारण बताना। परंतु आसुरी बुद्धिके लोग धर्मका यथार्थ स्वरूप न जाननेके कारण प्रायः धर्मको बुराइयोंकी खास वजह मानते हुए देखे जाते हैं। इसलिये वे स्वयंको 'धर्मनिरपेक्ष' या 'सेक्युलर' कहते हैं।

धर्मके नामपर होनेवाले अनर्थोंका सबसे बड़ा कारण यह है कि धर्मको सम्प्रदायके अर्थमें लिया जाता है, जबकि धर्म और सम्प्रदायमें जमीन-आसमानका अन्तर है। धर्म लक्ष्य या मंजिल है और सम्प्रदाय मार्ग या रास्ता है। धर्म तो सदा एक ही था, एक ही है और एक ही रहेगा। एक ही गन्तव्यतक पहुँचनेके अनेक रास्ते होते हैं। इसलिये सम्प्रदाय सदा ही अनेक थे, हैं

और रहेंगे। धर्मके अनेक होनेका प्रश्न ही नहीं, न ही उसके बनने-मिटनेका प्रश्न है। धर्म तो चन्द्र-सूर्यसे भी अधिक सत्य है। सृष्टियाँ बनती-मिटती हैं, परंतु धर्म तो त्रिकालाबाधित सत्य है, क्योंकि धर्म तो अविनाशी परमात्माका गुण है, स्वरूप है।

सम्प्रदाय तो सदा ही अनेक रहे हैं, बनते-मिटते रहे हैं। नये-नये सम्प्रदायोंका उदय होता रहा है। यह उदय होना अटल भी है और आवश्यक भी है। किसी भी सम्प्रदायमें जीवनी शक्ति तभीतक कायम रहती है, जबतक उसमें सिद्ध-परम्परा बनी हुई है। जिस सम्प्रदायमें जितने अधिक सिद्ध होंगे, उतना ही वह सम्प्रदाय पवित्रतायुक्त और दीर्घजीवी होगा। सिद्ध-परम्पराके अभावमें सम्प्रदाय मायाग्रसित हो जाता है। उसमें विकृतियाँ आ जाती हैं और उसकी कल्याणकारी शक्ति क्षीण हो जाती है। तब अन्य कोई महात्मा परमात्म-नियमके अन्तर्गत विवेकसम्पन्न होता है और परमात्माके ही आदेशसे लोगोंको कल्याणका रास्ता बताता है। इस प्रकार वह महात्मा एक नये सम्प्रदायका प्रवर्तक बनता है, और एक नया सम्प्रदाय अस्तित्वमें आता है।

'सम्यक् प्रदीयत इति सम्प्रदायः' अर्थात् जहाँ एक इष्ट, एक मन्त्र, एक ग्रन्थ, एक उपासनापद्धति, एक आचार-प्रणाली, एक सिद्धान्त इत्यादि आत्मकल्याणके मार्गके रूपमें सम्यक् रूपसे (भलीभाँति) प्रदान किये जाते हैं, वह सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय यानी धर्मोपलब्धिका एक पथविशेष। सम्प्रदाय साधकको एक ऐसा पथ प्रदान करता है, जिसपर चलकर वह धर्मोपलब्धि (अर्थात् परमात्मप्राप्ति)-के निर्दिष्ट लक्ष्यतक पहुँच सके। 'साम्प्रदायिक'का सरल अर्थ है 'साधनापथारूढ़'।

अपने सम्प्रदायको सर्वश्रेष्ठ मानना गलत नहीं, प्रत्युत अपने सम्प्रदायके प्रति ऐसी निष्ठा साधनमें प्रगतिके लिये अत्यावश्यक है। परंतु अन्य सम्प्रदायोंको हीन समझना, उनसे स्पर्धा करना, उनकी निन्दा करना, उनके प्रति दुर्भाव रखना, उन्हें नीचा दिखानेकी या क्षति पहुँचानेकी कोशिश करना—ये सब बातें गलत हैं। इससे न केवल साधक अपनी अधोगति करता है, बल्कि सामाजिक वातावरणको भी मलिन करता है। अर्थात् व्यष्टि-समष्टि दोनों स्तरोंपर दुष्परिणाम ही उपस्थित करता है। साम्प्रदायिक विद्वेष-हिंसा इन्हीं कारणोंसे भड़कती है, जिसके लिये दोष 'धर्म'को दिया जाता है।

किसी भी सम्प्रदायके प्रायः तीन ही अंग होते हैं—

१-सिद्धान्त, २-उपासनापद्धति, ३-आचारप्रणाली।

सिद्धान्त अर्थात् पारमार्थिक विषयों (आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत्, परलोक-पुनर्जन्म, ज्ञान-अज्ञान, बन्धन-मोक्षादि)-पर सम्प्रदायके मूलपुरुषके विचार।

उपासनापद्धति अर्थात् मल-विक्षेप-आवरणसे मुक्तिहेतु साधकको दिया गया साधन (पूजा-पाठ-प्रार्थना, जप-ध्यान, व्रत-उपवास, स्वाध्याय आदि नित्यकर्म)।

आचारप्रणाली अर्थात् जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त जीवनसे जुड़े हुए विभिन्न पहलुओं (शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय, अर्थार्जन, विवाह, सन्तानोत्पत्ति, परिवार, समाज, सम्पत्ति, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था, मृत्यु, श्राद्धादि)-के सन्दर्भमें कर्तव्य-अकर्तव्यसम्बन्धी निर्देश।

सम्प्रदायके उक्त अनुशासनका श्रद्धापूर्वक पालन करना 'सदाचरण या धर्माचरण' कहलाता है। धर्माचरण करनेसे नये संस्कारोंका अर्जन नहीं होता, पुराने संस्कारोंका क्षय शीघ्र होता है और धर्मोपलब्धिके लक्ष्यकी ओर साधक तीव्र गतिसे बढ़ता है। सदाचरण या धर्माचरणका अर्थ ही है सत्यस्वरूप धर्मरूप परमात्माके अनुकूल आचरण। इस प्रकार न तो सम्प्रदाय बुरा है, न साम्प्रदायिक होना बुरा है। सम्प्रदायके अनुशासनका समग्ररूपसे श्रद्धापूर्वक पालन करनेवाला सम्प्रदायके मूल्य और धर्मको बहुत शीघ्र समझने लगता है। इस स्वधर्मपालनरूप तपके प्रभावसे उसके अन्तस्में धर्मका यथार्थ स्वरूप भी शनैः-शनैः स्वयमेव प्रकाशित होने लगता है। ऐसा व्यक्ति सदा सर्वत्र सद्भावना और सौहार्दका ही विस्तार करता है।

साधकोंके प्रति—

सर्वोपरि साधन—सत्संग

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रश्न—आपको आध्यात्मिक लाभ कैसे हुआ?

उत्तर—हमें तो सत्संगसे लाभ हुआ है। मैं साधनसे विशेष महत्त्व सत्संगको देता हूँ; क्योंकि मुझे विशेष लाभ पुस्तकोंके पढ़नेसे और सत्संगसे हुआ है। औरोंके लिये भी मैं यही समझता हूँ कि वे यदि मन लगाकर, गहरे उतरकर सत्संगकी बातें समझें तो बहुत भारी लाभ ले सकते हैं।

एक विशेष बात और है। मुझे जितने वर्ष लगे, आपको उतने वर्ष नहीं लगेंगे। यह बात इसलिये कह रहा हूँ कि इस विषयमें आपको कठिनता मालूम दे रही है, वह नहीं है। यदि आप सत्संगको महत्त्व दें और इन बातोंका गहरा मनन करें तो बहुत जल्दी आपकी उन्नति हो सकती है—ऐसा मुझे स्पष्ट दीखता है।

मैं आपलोगोंको अनधिकारी नहीं मानता हूँ। आपमें कमी है, परंतु कमी दूर करनेकी सामर्थ्य भी आपमें पूरी है। मेरी समझसे आपमें इस विषयकी केवल उत्कण्ठाकी कमी है। यदि उत्कण्ठा जाग्रत् हो जाय तो कोई भी पापी-से-पापी हो, मूर्ख-से-मूर्ख हो और किसीके पास थोड़े-से-थोड़ा समय हो तो भी उसका उद्धार हो सकता है। उत्कण्ठा जाग्रत् करनेके लिये संसारके भोगोंको पानेकी जो भीतरसे लालसा है, इसे कृपा करके छोड़ दीजिये!

कबीर मनवा एक है, भावे जहाँ लगाय।
भावे हरिकी भक्ति कर, भावे विषय कमाय॥

संग्रह और भोगमें जो लगन लगी है, इसको मिटा दीजिये अर्थात् इतना रुपया हो गया, इतना और हो जाय; इतना सुख भोग लें; ऐश-आराम कर लें, मान मिल जाय, बड़ाई मिल जाय, नीरोगता मिल जाय, समाजमें मेरा स्थान बन जाय, हम ऐसे बन जायँ—ये जितनी इच्छाएँ हैं, इनका त्याग कर दीजिये। बस, फिर आपकी परमात्म-प्राप्तिकी लगन अपने-आप लग जायगी। आप यह कह सकते हैं कि जितनी लगन लगनी चाहिये, उतनी नहीं लग रही है; तो भाई! जितना त्याग होना चाहिये, उतना त्याग नहीं हो रहा है। मनमें त्याग है ही नहीं। त्याग क्या है? गीतामें भगवान्ने जगह-जगह इच्छाओंको त्यागनेकी बात कही है। इच्छा क्या है? यह होना चाहिये और यह नहीं होना चाहिये—यही इच्छाका स्वरूप है। इसे त्याग दीजिये तो कितना भारी लाभ हो जाय। गीता कहती है कि जो मनुष्य सम्पूर्ण इच्छाओंको त्याग देता है, वह स्थितप्रज्ञ है अर्थात् भगवत्प्राप्त पुरुष है।

जरा विचार कीजिये, इच्छासे कुछ मिलता तो नहीं, केवल अपनी फजीहत ही होती है। इच्छामात्रसे शरीरका, कुटुम्बका पालन-पोषण होता नहीं। पैसोंका पैदा होना, पदार्थोंका मिल जाना इच्छापर निर्भर नहीं है; कारण कि पदार्थोंकी प्राप्ति होती है पूर्वके कर्मोंसे और अभीके कर्मों (उद्योग)-से। पदार्थोंका और कर्मोंका घनिष्ठ सम्बन्ध है। पदार्थोंका इच्छासे बिलकुल ही सम्बन्ध नहीं है।

अब इस बातको आप समझनेकी कृपा करें कि इच्छाके साथ पदार्थोंका सम्बन्ध नहीं है। आपमेंसे कोई भाई यह कह सकते हैं कि हमने धनकी इच्छा नहीं की, इसलिये निर्धन रहे हैं। इच्छा कर लेते तो धनवान् हो जाते! इसलिये आपको भी यह बात जँचती ही है न कि इच्छाओंके साथ पदार्थोंका सम्बन्ध नहीं है। पदार्थोंका सम्बन्ध कर्मोंके साथ है; क्योंकि क्रिया और पदार्थ—दोनों प्राकृतिक वस्तुएँ हैं। दोनों एक तत्त्व हैं। पदार्थोंका सम्बन्ध कर्मोंके साथ है, वे कर्म चाहे पूर्वके हों या वर्तमानके। पूर्व कर्मोंको 'प्रारब्ध' कहते हैं और वर्तमानके कर्मोंका नाम 'पुरुषार्थ' है। अतः पुरुषार्थ हो तो कर्म है और प्रारब्ध हो तो कर्म है। कर्मोंके साथ पदार्थोंका सम्बन्ध है। इच्छाके साथ इनका सम्बन्ध बिलकुल नहीं है।

मैं इच्छा करूँ कि मेरा पालन-पोषण हो जाय,

तो क्या इस प्रकार इच्छा करनेसे मेरा पालन-पोषण हो जायगा? घण्टाभर सब मिल करके यह इच्छा करें, कि इसके कुटुम्बका पालन-पोषण हो जाय। इसके लिये पुरुषार्थ करो मत और इसको कौड़ी एक मत दो तो क्या ऐसी इच्छा करनेसे इसके कुटुम्बका पालन-पोषण हो जायगा? कदापि नहीं। अत: इच्छाके साथ इसका सम्बन्ध नहीं है। इच्छाके साथ सम्बन्ध है केवल परमात्माकी प्राप्तिका; परमात्माकी प्राप्तिकी केवल उत्कट अभिलाषा होनी चाहिये तो उस तत्त्वकी प्राप्ति हो जायगी?

प्रश्न—ऐसी विपरीत बात क्यों है?

उत्तर—पदार्थोंसे हमारा वास्तविक सम्बन्ध नहीं है, प्रत्युत उनसे हमारा अलगाव है। उनसे देश-कालकी दूरी है। अत: उनकी प्राप्ति कर्मोंसे होगी। परमात्मासे हमारी देश-कालकी दूरी नहीं है। इसलिये उनकी प्राप्ति केवल उत्कट अभिलाषासे हो जायगी। 'मैं'-'मैं' जहाँसे कहते हैं, वहाँ भी वे परिपूर्ण हैं। वे सर्वत्र और सदैव परिपूर्ण हैं। सर्वत्र और सदैव अर्थात् देश और काल उनके अन्तर्गत हैं। जहाँ उत्कट इच्छा हुई कि वे वहाँ भी प्रकट हुए! रुपये भगवान्‌की तरह सर्वत्र परिपूर्ण थोड़े ही हैं। वे तो पैदा करनेसे होंगे; परंतु परमात्मा पैदा नहीं करने पड़ते। उनका नया निर्माण नहीं करना पड़ता। उनमें कुछ परिवर्तन नहीं करना पड़ता। उनसे देश-कालकी दूरी नहीं। इसलिये वे तो केवल इच्छामात्रसे मिलते हैं; संसारकी और कोई भी वस्तु इच्छामात्रसे नहीं मिलती।

वास्तवमें तो परमात्मा मिले हुए ही हैं। इच्छामात्रसे मिलनेका कहनेमें भाव यह है कि संसारकी इच्छा मिटानेमें परमात्म-प्राप्तिकी इच्छा करनेकी सार्थकता है। नहीं तो परमात्मासे मिलनेके लिये किसी इच्छाकी भी आवश्यकता नहीं। वे तो हैं और ज्यों-के-त्यों हैं। सर्वत्र परिपूर्ण हैं। सदा ही मिले हुए हैं; परंतु संसारकी इच्छाएँ रहनेके कारण जीव संसारके सम्मुख और भगवान्‌से विमुख रहता है। इसलिये परमात्माके सर्वत्र रहते हुए भी उसे उनकी अनुभूति नहीं होती। इसलिये संसारकी इच्छाओंको मिटानेमें परमात्माकी प्राप्तिकी इच्छा आवश्यक है।

संसारकी वस्तुओंकी प्राप्तिके विषयमें नियम है कि इच्छाकर पुरुषार्थ करो और प्रारब्धका संयोग होगा तो मनचाही वस्तु मिलेगी अर्थात् तीनोंका संयोग होगा तो वस्तु मिलेगी। आप कह सकते हैं कि बड़ा परिवार है, रोटी-कपड़ेकी तंगी है, काम चलता नहीं तो इच्छा किये बिना कैसे रहें? तो इच्छासे थोड़े ही मिलेगा। काम करनेकी इच्छा कीजिये, निकम्मे मत रहिये, निरर्थक मत रहिये; पर झूठ, कपट, बेईमानी मत कीजिये। ठगी, धोखेबाजी मत कीजिये। न्याययुक्त काम कीजिये और मनमें रुपयोंको महत्त्व मत दीजिये।

यह जो लोभ है, संग्रह करनेकी इच्छा है, इसका त्याग कर दो तो आपका नया प्रारब्ध बन जायगा अर्थात् जो आपके प्रारब्धमें लिखा हुआ नहीं है, वह आपके सामने आ जायगा। परंतु आपके लोभका त्याग हो जाना चाहिये। और अन्त:करणमें इतना दृढ़ निश्चय हो कि चाहे मर जायँगे बेशक, पर पाप नहीं करेंगे, अन्याय नहीं करेंगे। झूठ, कपट, जालसाजी नहीं करेंगे, नहीं करेंगे। यदि मर जायँ तो क्या अन्तर पड़ेगा! मरना तो एक बार है ही। झूठ, कपट, बेईमानी करके मरेंगे तो पापकी पोटली बड़ी लेकर मरेंगे। बिना पाप किये हलके-हलके जल्दी ही मर जाइये तो क्या हानि हुई?

पाप इकट्ठा मत कीजिये। यदि पाप किये बिना पैसा न मिलता हो तो भूखे भले ही मर जाइये। इससे नरकमें नहीं जाइयेगा और पाप करके जीयेंगे तो नरकमें जाइयेगा ही; बच नहीं सकते, ब्रह्माजी भी बचा नहीं सकते।

आपलोग सत्संग करनेवाले हैं। सब समझ सकते हैं। मेरी बातको ठीक तरहसे समझिये। कर्तव्य-कर्म कीजिये, निकम्मे मत रहिये। इस विषयमें आपलोगोंको चार बातें कहा करता हूँ। इनपर ध्यान दीजिये—

(१) आप अपना सारा समय अच्छे-से-अच्छे,

ऊँचे-से-ऊँचे काममें लगाइये। निकम्मे मत रहिये, निरर्थक समय नष्ट मत कीजिये। ताश-चौपड़, खेल-तमाशा, बीड़ी-सिगरेट तथा सिनेमा-नाटक देखना—ये सब व्यर्थके काम हैं, तमोगुणी कार्य हैं, जिनसे नरकमें जाना पड़ेगा **'अधो गच्छन्ति तामसाः'** (गीता १४। १८)। ऐसे कामोंमें समय मत लगाइये। शरीरका निर्वाह हो, स्वास्थ्य ठीक रहे, दुनियाका हित हो, परमात्माकी प्राप्ति हो—ऐसे कार्योंमें लगे रहिये।

(२) जिस किसी कामको कीजिये, उसे सुचारुरूपसे कीजिये, जिससे मनमें सन्तोष हो। दूसरे भी कहें कि बहुत अच्छा काम करता है। जैसे लिखना हो, मुनीमी करना हो, बिक्री करना हो, खरीदारी करना हो आदि-आदि; संसारका जो कुछ काम करना हो, उसको बड़े सुचारुरूपसे, सुसंगतरूपसे कीजिये। माता-बहिनें रसोई अच्छी तरहसे बनायें। सामग्री चाहे सादी-से-सादी हो, परंतु रसोई बढ़िया ढंगसे बनायें। ठीक तरहसे भोजन परोसें। सबको सन्तोष कैसे हो? सबको किस तरहसे सुख पहुँचे—ऐसे ढंगसे घरका काम करें।

(३) इस बातका ध्यान रखें कि दूसरेका हक न आ जाय। आपका हक भले ही चला जाय, पर दूसरोंका हक कभी भी आने नहीं दें। इस बातकी बड़ी भारी सावधानी रखो।

(४) अपने व्यक्तिगत जीवनके लिये कम-से-कम खर्चा करो। शरीर-निर्वाहके लिये, खाने-पीनेके लिये, ओढ़ने-पहननेके लिये साधारण रीतिसे खर्चा करो। केवल काम चलाना है; ऐश-आराम, स्वाद-शौकीनी नहीं करनी है। यदि आप ऐसे काम करें तो आपका घाटा नहीं रह सकता; करके देख लो।

आजकल लोग कहते हैं कि क्या करें, निठल्ले बैठे हैं, काम नहीं है। यह बिलकुल फालतू बात है। निकम्मे क्यों बैठे हैं? नाम-जप करो, कीर्तन करो, गीता-रामायणका पाठ करो। घरका काम करो। घरमें झाड़ू लगाओ, बर्तन धोओ, जूते ही साफ करो। नालियाँ ही साफ करो। टट्टी-पेशाबकी जगह साफ करो, उसको पानी डालकर स्वच्छ करो, निर्मल करो। इस तरह कुछ-न-कुछ करते रहो। करना चाहो तो बहुत काम निकल सकता है। सेवाका काम करनेसे अन्तःकरण निर्मल होगा। व्यर्थ समय बरबाद मत करो। मानव-शरीरका समय बरबाद करनेके लिये नहीं है। तेलीके घरमें तेल होता है, तो लोटा भरके पैर धोनेके लिये थोड़े ही है।

भगवान्‌ने मानव-शरीर दिया है। इस मानव-शरीरमें विवेक दिया है। विवेक दिया है समयका सदुपयोग करनेके लिये, न कि फालतू घूमनेमें, सिनेमा देखनेमें या ताश-चौपड़ खेलनेमें समय बरबाद करनेके लिये। मानव-जीवनका समय श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ उपयोग करनेके लिये है, उस समयको बरबाद करना बड़ी भारी हानि है। रुपया फिर पैदा कर सकते हैं, जवान बेटा मर जाय तो छोटे बालक जवान हो सकते हैं, गृहस्थियोंके नये पैदा हो सकते हैं, पर आयु (समय) किसी तरहसे पैदा नहीं हो सकती। वह तो नष्ट ही होती है। उसे यों ही बरबाद करते हैं। पैसोंका खर्च करते समय ध्यान रखते हो, सोच-समझकर एक-एक पैसा खरचते हैं और समयको यों ही बरबाद कर देते हैं, यह कोई बुद्धिमानी है?

हवाई जहाज देखनेमें समय लगा दिया। क्या लाभ हुआ, जरा सोचो! उससे स्वास्थ्य सुधरा? समाज सुधरा? रुपये मिले? भगवान् मिले? क्या मिला? आयुरूपी अमूल्य धन जो आपको मिला हुआ है, इसे ऐसे ही बरबाद क्यों करते हो? सावधान रहो। यदि आप समय बरबाद नहीं करेंगे और अच्छे-से-अच्छे काममें समय लगायेंगे तो आपकी लौकिक-पारलौकिक उन्नति अवश्य होगी। इसमें मुझे संदेह नहीं है। आप किसी भी क्षेत्रमें जाओ, आपकी उन्नति होगी। नास्तिक-से-नास्तिक आदमी भी यदि सोच-समझकर समयका सदुपयोग करेगा तो उसकी अपनी धारणाके अनुसार, क्रियाके अनुसार उसकी उन्नति होगी। यदि आस्तिक मनुष्य विचारकर समयका सदुपयोग करेगा तो उसे भगवत्प्राप्ति हो सकती है। सावधानीकी आवश्यकता है। असावधानीमें समय बरबाद हो जाता है। इसलिये

प्रमाद मत करो।

दूसरेका हक मत आने दो। जो शरीर अपना कहलाता है, वह भी तुम्हारेसे दूर है, उससे सुख लेना ही पूरे संसारका हक लेना है, इस वास्ते इससे सुख मत लो। ऐसे ही अपने शरीरसे भिन्न दूसरे जितने भी लोग हैं, किसीके हकको मत लो। अपने स्वयंसे स्त्री भी दूर कहलाती है। इस वास्ते स्त्रीका जो अधिकार है, उसकी पूर्ति करो। उसका हक मत छीनो। पुत्र आपसे दूर है तो पुत्रका पालन-पोषण, शिक्षण बढ़िया-से-बढ़िया करो। पिताका पुत्रके प्रति जो कर्तव्य है, उसका पूरा पालन करो। माता-पिताकी पूरी सेवा करो। स्त्रीके प्रति जो कर्तव्य है, वह भी पूरा पालन करो। किसीका अधिकार मत लो। हक मत छीनो। पड़ोसी है, व्यापारी है, जिनसे व्यवहार, व्यापार आदि करते हैं, उनका हक हमारेमें नहीं आना चाहिये। उनके साथ प्रेम, ईमानदारीपूर्वक सच्चा व्यवहार करो। इतना करनेपर भी ऋण पूरा नहीं चुकेगा; परंतु उनसे कोई आशा नहीं रखेंगे तो नया ऋण नहीं चढ़ेगा। अभी तो दूसरेके हकका पता ही नहीं लगता, पर सावधानी रखनेपर पता लगेगा कि हम कहाँ दूसरोंका हक मार रहे हैं।

अभी आपलोगोंसे यह पूछा जाय तो उत्तर आयेगा कि हम तो किसीका हक लेते ही नहीं। हम तो ठीक करते हैं। हम पाप करते ही नहीं; ऐसे व्यक्ति मुझे मिले हैं और मेरेसे उन्होंने कहा है—'भजन करनेकी क्या जरूरत है? हम पाप तो करते ही नहीं। भगवान्‌का भजन वह करे, जो पाप करता है। जब हम पाप करते ही नहीं, तब भजनकी क्या जरूरत?' उनको पता ही नहीं है कि पाप क्या है? अन्याय क्या होता है?

सावधानी क्या रखनी है? सावधानी यह रखनी है कि आपने अभी जो बातें सुनीं, इसका अब हम आयुभर पालन करेंगे, ऐसा ही करेंगे, असावधानी नहीं करेंगे। इस तरह इनपर कायम रहो। ऐसे ही सत्संगकी बातें सुननेमें सावधान रहो। मैंने कहा कि पैसोंका, पदार्थोंका सम्बन्ध इच्छा अथवा चिन्तनसे नहीं है। उनका कर्मोंके साथ सम्बन्ध है। इस बातको अच्छी तरहसे समझो।

आप कह सकते हैं कि इच्छा और चिन्तनके बिना कैसे काम चल सकता है? हमको तो व्यापार करना है। कई धन्धे करने हैं, व्यापार-सम्बन्धी कई बातोंका चिन्तन करना पड़ता है। चिन्तन क्यों करना पड़ता है? काम-धन्धे आदि व्यवहारको सुचारुरूपसे ठीक करनेके लिये समयपर चिन्तन भले ही करें, पर परिणामकी चिन्ता क्यों करते हैं? चिन्ता करना तो मूर्खता ही है। चिन्ता करनेसे क्या लाभ होगा? केवल शक्तिका अपव्यय होगा। काम करना पड़ता है, सेवा करनी पड़ती है, यह तो ठीक है, पर चिन्ता करना बिलकुल फालतू बात है।

चिन्ता हम करते नहीं महाराज! चिन्ता आ जाती है। आ जाती है तो उस चिन्ताको छोड़ो, और काम करो। चिन्ता करनेसे बुद्धि नष्ट होती है। शान्तिसे विचार करो। विचार करनेसे बुद्धि विकसित होती है। चिन्ता और वस्तु है, विचार और वस्तु है। काम किस रीतिसे करें? किस रीतिसे कुटुम्बका पालन करें? व्यवहार करें? व्यापार करें? किस तरह सबके साथ प्रेमका सम्बन्ध रखें—इन बातोंका शान्त चित्तसे विचार करना चाहिये। इससे बुद्धि विकसित होती है। सामर्थ्यका विचार किये बिना कर्म करनेको 'तामस कर्म' कहा गया है।

इतना बड़ा कुटुम्ब है, पैदा है नहीं! हाय! क्या करें? इस प्रकार चिन्ता करके दुखी होनेसे बुद्धि नष्ट होती है? इससे तो काम करनेमें बाधा ही पड़ेगी। इस वास्ते विचार तो करो, पर चिन्ता बिलकुल मत करो। पुस्तकें पढ़ो। स्वयं विचार करो। आपसमें विचार-विनिमय करो। सत्संगकी बातोंको सावधानीसे सुनो, उनके अनुसार काम करो और अपने जीवनको उन्नत बनाओ। बाधाएँ आयें तो उनको सुलझाकर पुनः चेष्टा करो। इस प्रकार सत्संगसे लाभ लो। 'भगवत्प्राप्ति' सत्संगसे बहुत शीघ्र एवं सुगमतासे हो सकती है। सत्संगकी महिमा कहाँतक कही जाय! सत्संग सर्वोपरि साधन है।

नारायण! नारायण! नारायण!

विघ्नहर्ता गणपति गणेश

[एक सांस्कृतिक रेखांकन]

(डॉ० श्रीअजितकुमारसिंहजी, आई०पी०एस०)

गणपतिका प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद (२। २३। १)-में निम्न स्तवनके साथ प्राप्त होता है—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥

शुक्लयजुर्वेदके अश्वमेधयज्ञ-प्रकरणमें भी 'गणपति' शब्दका उल्लेख हुआ है। कुछ लोग इसको प्राचीन गणराज्योंके अधिपतिका सूचक मानते हैं, किंतु यहाँ यह स्मरणीय है कि वैदिक शिव 'रुद्र' के गणोंके प्रमुख या नायकके रूपमें 'गणपति'का उल्लेख विवादरहित है। पुराणसाहित्य तो एकमत हो 'रुद्र' के मरुत् आदि असंख्य गणोंके नायक अथवा स्वामीके रूपमें विनायक या गणपतिको शिव-परिवारके अंगके रूपमें वर्णित करता है। यही नहीं, शिव-परिवारके ये गणपति तो वस्तुतः समस्त देवमण्डलके नायक और प्रथमपूज्य बन गये।

वैदिक 'रुद्र' शिवकी भाँति गणपति गणेशमें भी भयंकर और विघ्नकारक स्वरूपके साथ ही मंगलकर्ता, विघ्नहर्ता, सर्वसिद्धिप्रदाता मांगलिक स्वरूपका समावेश है।

पुराणोंमें; विशेषकर ब्रह्मवैवर्तपुराण (गणपतिखण्ड अध्याय १२) तथा शिवपुराण (कुमारखण्ड अध्याय १७)-में इनके गजानन बननेकी विभिन्न कथाएँ वर्णित हैं। कहीं इनके शनिदेवके देखनेसे शिरोभंगका अंकन है, तो कहीं स्वयं भगवान् शिवद्वारा इनके सिरको काटनेकी कथा वर्णित है। एक तीसरी प्रमुख कथाके अनुसार स्वयं माता पार्वतीने अपनी कल्पनाको 'गजशीर्ष'का मूर्तरूप दिया था। भगवान् शिवके परमभक्त परशुरामजीद्वारा द्वन्द्वयुद्धमें इनके एक दाँतके खण्डित होनेकी कथा भी ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वर्णित है। अग्निपुराणके अध्याय ७१ तथा ३१३ एवं गरुड़पुराणके अध्याय २४ भी श्रीगणेशजीसे सम्बन्धित हैं। इनके अतिरिक्त गणेश-उपपुराण, मुद्‍गल-उपपुराण और गणपतिसंहिता तो गाणपत्य-सम्प्रदाय (श्रीगणेशोपासक सम्प्रदाय)-के प्रमुख ग्रन्थ हैं ही। गज या हाथीके सिरसे तात्पर्य श्रीगणेशजीकी गम्भीरता, अद्वितीय बौद्धिक क्षमता और प्रकाण्डपाण्डित्य है। वास्तवमें श्रीगणेश ही गणपति, गणनायक, विनायक, विघ्नकर्ता, विघ्नहर्ता, मंगलमूर्ति और ऋद्धि-सिद्धिप्रदाता हैं।

महाभारतके अनुशासन-पर्वके एक सौ पचासवें अध्यायमें गणेश्वरों तथा विनायकोंका स्तुतिसे प्रसन्न होकर विभिन्न पातकोंसे रक्षा करनेका वर्णन है। यहाँ गजानन गणेश और षडानन कार्तिकेय दोनोंको 'गणाधीश' और भगवान् शंकरका पुत्र कहा गया है, किंतु गजानन गणेश परब्रह्मका अवतार होनेके कारण आदरणीय 'महागणाधिपति' हैं। यही महागणाधिपति अपनी इच्छानुसार अनन्त विश्व तथा अनन्त ब्रह्माण्डोंके सर्जक तथा नियन्त्रक हैं। इसीलिये सभी सम्प्रदाय गणेशजीकी पूजा सर्वप्रथम करते हैं। यही कारण है कि गणेशोपासना तथा गणेश-मन्दिर सम्पूर्ण भारतमें समानरूपसे प्रचलित हैं। इन्हीं आदिदेवके नामपर 'गाणपत्य सम्प्रदाय' अस्तित्वमें आया।

श्रीगणेशजीकी उपासना दो रूपोंमें की जाती है—परब्रह्म परमात्मारूपमें और गुणाभिमानी अथवा निमित्ताभिमानी देवरूपमें। 'मयूरेश्वरस्तोत्र' के पहले ही श्लोकमें अंकित है—

परब्रह्मरूपं चिदानन्दरूपं
सदानन्दरूपं सुरेशं परेशम्।
गुणाब्धिं गुणेशं गुणातीतमीशं
मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः॥

स्पष्टतया यहाँ श्रीगणेशको परब्रह्मरूप, चिदानन्दरूप, परेश, महेश, गुणासागर, गुणेश, गुणातीत, ईश, मयूरेशका सम्बोधन देकर प्रणाम किया गया है।

'गणपतिस्तव' के प्रथम श्लोकमें भी अजन्मा, अद्वितीय, पूर्ण 'पर' या कारणस्वरूप, निर्गुण, निर्विशेष, निरीह (इच्छारहित) कहते हुए परब्रह्मरूप गणेशकी वन्दना की गयी है—

अजं निर्विकल्पं निराकारमेकं निरानन्दमानन्दमद्वैतपूर्णम्।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम॥

यही नहीं, 'एकदन्तस्तोत्र' में स्पष्टरूपसे उल्लिखित है, कि परमसत्तावान् एकदन्त गणेश ही अपनी मायासे विश्वकी रचना करते हैं। वे ही त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)-से उनका संस्थागत कर्म कराते हैं।'एकदन्तस्तोत्र' के श्लोक सत्रहमें तो यहाँतक कहा गया है कि—

त्वदाज्ञया सृष्टिकरो विधाता त्वदाज्ञया पालक एकविष्णुः।
त्वदाज्ञया संहरको हरोऽपि तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥

अर्थात् आपकी आज्ञासे विधाता सृष्टिकी रचना करते हैं, आपकी आज्ञासे अकेले विष्णु सृष्टिका पालन करते हैं और महादेव भी आपकी आज्ञासे ही सबका संहार करते हैं। हम उन्हीं आप एकदन्तकी शरण लेते हैं।

गणेशजी ॐकारस्वरूप हैं। ओंकारमें 'ॐ' के ऊपरवाले भागको मस्तकका वृत्त, नीचेके विशालकाय भागको सृष्टिका विस्तार, सूँड़को नाद तथा मोदक (लड्डू)-को बिन्दु मानते हुए इनमें ही सृष्टिकी कल्पना की गयी है। मोदकको असंख्य जीवोंका प्रतीक माना गया है। सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा ही इनके त्रिनेत्रके प्रतीक हैं। एक मान्यता यह भी है कि यदि भगवान् शिव 'नटराज' हैं, तो श्रीगणेश 'नटेश'। असमके सुप्रसिद्ध कामाख्यामन्दिरमें ओंकार नटेशकी प्रतिमा सबका ध्यान बरबस ही आकृष्ट कर लेती है।

आदिशंकराचार्यने अपनी पंचदेवोपासनामें श्रीगणेशको प्रथम स्थान दिया है। उनके अनुसार तर्पण-अभिषेकद्वारा पूजित श्रीगणेश जलतत्त्वके प्रतीक, लिंगरूपसे पूजित शिव पृथ्वीतत्वके प्रतीक, यज्ञ-हवनद्वारा अर्चित आदिशक्ति देवी अग्नितत्त्वकी प्रतीक, नमस्कारद्वारा पूजित सूर्य वायुतत्त्वके प्रतीक तथा शब्द या नामोच्चारद्वारा सम्पूजित विष्णु आकाशतत्त्वके प्रतीक हैं।

प्रतिमा-विज्ञानमें गजवदन श्रीगणेशकी सिंहारूढ़, मूषकारूढ़ और शेषशय्यारूढ़, चतुर्भुज तथा त्रिनेत्रधारी मूर्तियाँ भारतमें ही नहीं, वरन् भारतके बाहर जावा-सुमात्रामें भी प्राप्त हैं। इस सम्बन्धमें 'कालिकाकवच' का यह मंत्र या श्लोक बहुप्रचलित है—

गजेन्द्रवदनं नौमि रक्तविघ्नविदारकम्।
पाशांकुशवराभीतिलसद्भुजचतुष्टयम्॥

(कालिकाकवचम् श्लोक २)

इस श्लोकसे गजवदन श्रीगणेशजीके चार हाथोंमें, ऊपरवाले दो हाथोंमें क्रमशः पाश और अंकुश तथा नीचेके दोनों हाथोंमें क्रमशः वरद और अभयमुद्रा होनेके प्रतिमा-विज्ञानके मूर्ति-निर्माणके सिद्धान्तका समर्थन होता है।

श्रीगणेश-जन्मोत्सवके रूपमें गणेशचतुर्थी या गणपतिचतुर्थीका व्रत और उत्सव भारतव्यापी है।

भारतवर्षमें बंगालकी दुर्गापूजा, उड़ीसाकी रथयात्रा, सुदूर दक्षिणके पोंगल तथा ब्रजक्षेत्रकी जन्माष्टमीके भव्य क्रममें महाराष्ट्रका गणपति-पूजन विशिष्ट महत्त्व रखता है।'गणपति बप्पा मोरया' के जयघोषसे महाराष्ट्रका दिग्-दिगन्त गुंजायमान हो उठता है। मुम्बईके भव्य गणपति-पाण्डालोंकी भव्यता मन मोह लेती है। वहाँ गणेशोत्सवकी पुरातन प्रथा अपनी लोकप्रियताके कारण शिखरपर है। मध्ययुगीन भारतमें छत्रपति शिवाजीके नेतृत्वमें मराठाशक्तिके अभ्युदयके साथ यह प्रथा अपने गौरवपूर्ण स्थानतक पहुँची। अंग्रेजोंके विरुद्ध स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके समय इसने ही वहाँके जन-जनको स्वतन्त्रताकी भावनाके नवीन उत्साहसे ओत-प्रोत कर दिया था। यही कारण है कि स्वतन्त्रता-आन्दोलनका गढ़ माने गये पूनाके निकटवर्ती पुरातन अष्टविनायकमन्दिरोंकी परिक्रमाकी पुरातन परम्पराको पुनर्जीवन प्राप्त हुआ।

इन मन्दिरोंके दर्शनका क्रम क्रमशः श्रीमयूरेश्वर, श्रीसिद्धिविनायक, श्रीबल्लालेश्वर, श्रीवरदविनायक, श्रीचिन्तामणि, श्रीगिरिजात्मज, श्रीविघ्नेश्वर और श्रीमहागणपति है।

ज्योतिषशास्त्रमें श्रीगणेशको 'केतु' ग्रहका इष्टदेव माना जाता है। श्रीगणेशजीसे सम्बन्धित कुछ प्रमुख ग्रन्थोंमें ब्रह्मवैवर्तपुराण, स्कन्दपुराण, शिवपुराण, भविष्यपुराण, अग्निपुराण, लिंगपुराण, गरुड़पुराण, गणेशपुराण, मुद्गलपुराण तथा गणेशसंहिता प्रमुख हैं।

इतना ही नहीं, अपितु गणेश-अथर्वशीर्ष, वरदतापनीय-उपनिषद् और गणपति-उपनिषद् श्रुतिका अंश हैं।

भगवती लक्ष्मीके ऐहिक वास-स्थान

(स्वामी श्रीरामराज्यम्‌जी महाराज)

इस लेखमें यह बतानेका प्रयास किया गया है कि यद्यपि भगवती लक्ष्मी एक दैवी सत्ता हैं, परंतु भूलोकमें भी उनके ऐहिक वास-स्थान हैं और वहाँ उनके दर्शन प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकारसे उनके दर्शन प्राप्त करनेकी यह प्रक्रिया गुप्त है और इसमें ही उनकी पूजा करनेका ढंग अन्तर्ग्रथित है।

आध्यात्मिक सम्पदा

आध्यात्मिक सम्पदा भगवती लक्ष्मीके ऐहिक वास-स्थानोंमेंसे एक है। यह सम्पदा एक सिक्केके समान है, जिसके एक ओर लिखा हुआ है—भगवान् और उनकी सृष्टिके साथ सामंजस्य तथा दूसरी ओर लिखा हुआ है—सद्‌गुण।

सामंजस्य

सामंजस्य शान्ति, अनुकूलता और एकरसताकी अवस्था है। भगवान्‌के साथ सामंजस्य होनेका अर्थ है—उनमें अडिग आस्था तथा उनसे अटूट प्रेम होना। इस आस्था और प्रेमको हमारे प्रत्येक कर्म, विचार और वचनमें झलकना चाहिये। इस सामंजस्यकी अवस्थाको निम्नलिखित प्रकारसे लाया जा सकता है—

सदा मानसिक स्तरपर भगवान्-रूपी माताकी बाँहोंसे चिपटे हुए पूर्ण निश्चिन्तताके साथ रहना (अथवा सदा मानसिक स्तरपर भगवान्‌के चरणोंपर अपना सिर रखकर लेटे हुए पड़े रहना) और कहते रहना—'मैं आपकी शरणमें हूँ—मारो या तारो'।

अपनी समस्त इच्छाओंको भगवान्‌की इच्छाके अधीन करते हुए उनकी ही इच्छाको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना।

भगवान्‌से अपने सारे दोषोंको कह देना।

सदा सोचना—'भगवान्! मैं हमेशाके लिये आपका और केवल आपका हूँ।'

भगवान्‌की सृष्टिके साथ सामंजस्यकी अवस्था इस जागरूकतासे उत्पन्न होती है कि (१) समग्र सृष्टिके समस्त प्राणी-पदार्थमें भगवान् विद्यमान हैं और उन दिव्य उच्चतम उभयस्थ घटकके माध्यमसे हम सबके साथ अन्दर-ही-अन्दर जुड़े हुए हैं। * तथा (२) हम-सबके माता-पिता एक भगवान् ही हैं। अत: हम सब एक ही परिवारके सदस्योंकी तरह एक-दूसरेसे आन्तरिक ऐक्यकी डोरीमें बँधे हुए हैं।

सद्‌गुण

उच्च नैतिक उत्कर्षको परिलक्षित करानेवाले व्यवहार तथा अभिवृत्तियोंको सद्‌गुण कहा जाता है। एक ओर भगवान् और उनकी सृष्टिके साथ सामंजस्यकी अवस्था आध्यात्मिक सम्पदाकी फुलवारीको सुन्दरता प्रदान करती है, दूसरी ओर सद्‌गुण इस फुलवारीको सुरक्षित करते हैं।

कुछ प्रमुख सद्‌गुणोंकी चर्चा नीचे प्रस्तुत की गयी है—

(१) सुन्दरता

सुन्दरताका सम्बन्ध शरीरकी सजावटसे नहीं है। नैतिक औचित्य, दुष्टता-अत्याचारसे दूरी, मानसिक क्षितिजके विस्तारण तथा पर-हितैषितामें ही सुन्दरताका सद्‌गुण झलकता है।

कर्मोंकी सुन्दरता—जब भगवान्‌द्वारा प्रदत्त शक्ति

* समग्र सृष्टिके समस्त प्राणी-पदार्थ—इस वाक्यांशमें सबको परिवेष्टित कर लेनेवाली एक अतिव्यापक अवधारणाकी ओर संकेत किया गया है। इस अवधारणापर ध्यान देनेसे 'स्व' और 'पर'को एक समान धरातलपर देखनेका औचित्य समझमें आने लगता है। इस सोचका परवर्ती रूप है—'स्व' से अधिक 'पर'को महत्त्व देना तथा 'पर' के अभावमें 'स्व' को अधूरा मानना। इस अवधारणाका एक यह भी अर्थ है कि 'पर' के सीमित अर्थों (इष्ट मित्र, सगे-सम्बन्धी आदि)-से आगे बढ़कर इसके दायरेमें परिचित-अपरिचित, शत्रु-मित्र—सभीको समाविष्ट कर लेना चाहिये।

और प्रेरणाकी धुरीपर ही कर्मोंके सम्पादनका चक्र घूमता है तथा जब कर्मोंका कर्ता उपकारिताके प्रति प्रतिबद्ध होता है, तब उन कर्मोंसे सौन्दर्यकी किरणें फूटती हैं।

मनकी सुन्दरता—दुर्भावनाओं, विद्वेषपूर्ण विचारों तथा तुच्छ प्रयोजनोंसे मुक्त मन ही सुन्दर मन कहलाता है। सुन्दर मनके संकल्प पर-सेवा और पर-हितके ताने-बानेसे बुने हुए होते हैं। दूसरोंकी विषम परिस्थितियोंके प्रतिकारक उपाय ढूँढ़नेके उद्देश्यसे जब हम उन परिस्थितियोंमें अपने मनको ले जाकर उसकी सहायतासे उन परिस्थितियोंको मानसिक धरातलपर उनके वास्तविक रूपमें भोगने या अनुभव करनेका प्रयास करते हैं, तब मनकी एक सकारात्मक भूमिका उसे सौन्दर्य प्रदान करती है। इस मानसिक प्रक्रियाको समानुभूति कहा जाता है।

शरीरकी सुन्दरता—पर-कल्याणमें रत शरीरको सुन्दर शरीर कहा जाता है। जब शरीर दूसरे प्राणियोंके दु:ख-दर्दका दर्पण बन जाता है, तब ऐसे शरीरको भी सुन्दर कहा जाता है।[1]

वही चेहरा सुन्दर होता है, जो दूसरोंकी उदासीके कारण उदास हो जाय। वे ही आँखें सुन्दर होती हैं, जो दूसरोंको रोता देखकर रो पड़ें। वे ही हाथ सुन्दर होते हैं, जो दूसरोंसे लेना नहीं जानते, दूसरोंकी खाली झोलियाँ भरनेके लिये देना ही जानते हैं। वे ही पैर सुन्दर होते हैं, जो दूसरोंकी करुण पुकार सुनकर आधी रातको भी दौड़ पड़ते हैं।

अवबोधक दृष्टिकी सुन्दरता—सुन्दर अवबोधक दृष्टि अमंगलमें भी मंगलको खोज लेती है एवं अभद्रता और वीभत्सतामें भी कोई-न-कोई अच्छाई ढूँढ़ लेती है।

(२) प्रेम

परहितार्थ, नि:संकोच तथा तत्परतापूर्वक किये गये त्यागको प्रेम कहते हैं। जब 'तुम', 'हम' और 'दूसरों' की तुलना में 'मैं' छोटा पड़ जाता है, तब प्रेमका उदय होता है। जब स्वार्थ और अहंकार तिरोहित हो जाता है, तब प्रेमका आविर्भाव होता है। प्रेम है अपनेको दे डालना। ऐसा तब हो पाता है, जब (क) दूसरोंको अपनी खुशियाँ देकर उसके बदलेमें उनके दु:खोंको ले लेनेका भाव मनमें उठता है, (ख) जब अपनी कही जानेवाली वस्तुओंसे स्वामित्वकी तथा अपनेपनकी भावनाएँ हटाकर उन्हें जरूरतमन्द व्यक्तियोंको दे डालनेकी इच्छा उत्पन्न होती है तथा (ग) जब दूसरोंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके लिये अपनी आवश्यकताओंको नकार दिया जाता है।

(३) उदारता

दूसरोंको सहायता, धनादि देने या देनेके लिये सहर्ष तत्पर रहनेके गुणको उदारता कहा जाता है।

अपने जीवनकी अनुकूल परिस्थितियोंमें दूसरोंको साझीदार बनाना तथा 'लेने' से अधिक 'देने' को महत्त्व देना उदारताके सद्‌गुणके प्रमुख लक्षण हैं।

उदारताकी अवधारणाका सार है—'प्रेमसे देना', 'प्रसन्नतापूर्वक देना', 'अयाचित देना' तथा 'देनेका कोई हिसाब-किताब (लेखा) न रखना'।

(४) समृद्धि

समृद्धि[2] समृद्ध व्यक्तिका लक्षण है। समृद्ध व्यक्ति वह होता है, जिसके पास उच्चतर मूल्यों (सेवा, दया, सत्यनिष्ठा, अहिंसा आदि)-का धन होता है। किसी भी ऐसी वस्तुका स्वामित्व, जो इन मूल्योंसे मेल नहीं खाता, उसे निर्धनताके गर्तमें ढकेल देता है। उसकी समृद्धिका निर्धारण उसकी भौतिक सम्पत्ति नहीं करती।[3]

(५) मलिनताका अभाव

अनैतिकता तथा मिथ्याचारिताकी आन्तरिक मलिनताके

१-यह शरीरकी सुन्दरताका अधूरा वर्णन है। सुन्दर शरीर दूसरोंके सुख तथा दु:ख—दोनोंका ही दर्पण होता है। जहाँ सुन्दर शरीर दूसरोंका दु:ख देखकर दुखी हो जाता है। वहीं दूसरोंको सुखी और हर्षित देखकर उसकी भी आँखें हर्षसे चमक उठती हैं और उसके चेहरेपर मुसकराहट फैल जाती है।

२-जब समृद्धि परोपकारका मार्ग प्रशस्त करती है, तो यह मात्र एक लक्षण न रहकर सद्‌गुण बन जाती है।

३-भौतिक सम्पत्तिको सामान्यत: भगवती लक्ष्मीका वास-स्थान माना जाता है, परंतु यह सम्पत्ति उनका अस्थायी वास-स्थान है। जब इस सम्पत्तिका उपयोग स्वार्थपूर्वक होने लगता है, तब वे इस वास-स्थानको छोड़ देती हैं। वे वहाँ तभीतक रहती हैं, जबतक इस (सम्पत्ति)-का (सद्) उपयोग परिचित-अपरिचित सभी जरूरतमन्द व्यक्तियोंद्वारा होने दिया जाता है।

अभावसे नैतिकता, निष्कपटता तथा सत्यनिष्ठाका प्रादुर्भाव होता है। इस अभावकी स्थितिको बनाये रखनेके लिये परुषता, विश्वासघात, ईर्ष्या, लोभ और कृतघ्नताके दुर्गुणोंसे दूरी बनाये रखना अति आवश्यक है।

और एक वास-स्थान यह भी

भगवती लक्ष्मी ऐसे घरोंमें निवास करती हैं, जो साफ-सुथरे होते हैं, जहाँ पशु-पक्षियोंको आहार दिया जाता है और जहाँ क्षुधा-पीड़ितोंको अन्न वितरित किया जाता है और जहाँ परिवारके सदस्य भगवान्‌को ही अपने जीवनका सर्वस्व मानते हैं, जो कभी अप्रिय वाणी नहीं बोलते और दुर्व्यवहार नहीं करते, जो अध्यवसाय, सन्तोष, प्रशान्तिके गुणोंके धनी होते हैं तथा जिनके कर्मोंके लाभार्थियोंका दायरा अपने-अपनोंतक सीमित न रहकर परिचित-अपरिचित, निकट और दूरके सभी लोगोंतक फैला हुआ होता है और जिनके बाजू इतने लम्बे होते हैं कि उनसे वे पूरे संसारको अपने प्रेमालिंगनमें ले सकते हैं।

धर्मग्रन्थ क्या कहते हैं?

१. सदाचारिता, ईमानदारी तथा निरहंकारता (विनीतता)-के गुण मेरे वास-स्थान हैं। (महाभारत, शान्तिपर्व, भगवती लक्ष्मी-प्रह्लाद-संवादमें भगवती लक्ष्मीका कथन)

२. मैं वहाँ रहती हूँ, जहाँ लोग सत्यवादी होते हैं, वैराग्य-तपके प्रति निष्ठावान् होते हैं तथा परोपकारके कार्योंमें रत रहते हैं। (महाभारत, शान्तिपर्व, भगवती लक्ष्मी-इन्द्र-संवादमें भगवती लक्ष्मीका कथन)

३. मैं उन पुरुषोंमें निवास करती हूँ, जो क्रोधजयी हैं और कर्तव्यनिष्ठ होते हैं। मैं उन स्त्रियोंमें निवास करती हूँ, जो गो-सेवा और देव-विप्रकी पूजा करती हैं। (महाभारत, अनुशासन पर्व, भगवती लक्ष्मी-रुक्मिणी-संवादमें भगवती लक्ष्मीके कथनका भीष्मद्वारा उद्धरण)

४. भगवती लक्ष्मीका वास-स्थान गोमय है। जो स्थान गोमयसे लीपे जाते हैं, उन स्थानोंमें भगवती लक्ष्मी स्वयं पहुँच जाती हैं। (स्कन्दपुराण)

निष्कर्ष—लाक्षणिक शैलीमें यह कहा जा सकता है कि भगवती लक्ष्मीके वास-स्थान सामंजस्यके गारे और सद्‌गुणोंकी इष्टिकाओंसे निर्मित किये हुए होते हैं।

इस लेखमें वर्णित तथ्योंका निहितार्थ यह है कि भूलोकमें भगवती लक्ष्मीका दर्शन प्राप्त करनेके लिये हम-सबको अपने विचारों, वाणी और कर्मोंके दर्पणमें उपर्युक्त सामंजस्यको प्रतिबिम्बित होने देना चाहिये और अपने-आपको उपर्युक्त सद्‌गुणोंका साकार रूप बनाना चाहिये। अपनी भौतिक सम्पदाको पर-हितार्थ उपयोगमें लाना चाहिये। यदि हम गृहस्थ हैं तो हमें भगवत्प्रेममें पगे हुए उत्तम चरित्रके निष्कलंक गृहस्थ बनना चाहिये।

इस प्रकार भगवती लक्ष्मीका दर्शन करना उनकी पूजा करनेका एक उत्तम ढंग है। उनकी इस प्रकारकी पूजा जीवनका निर्माण करनेवाली एक लम्बी प्रक्रिया है, जो हमारे जीवनको दूसरोंके लिये उपयोगी बनाती है तथा पर्वोंके अवसरपर और मन्दिरोंमें की जानेवाली (भगवती लक्ष्मीकी) पूजाको अनुपूरित करती है।

संक्षेपमें—जहाँ (भगवान् और उनकी सृष्टिके साथ) सामंजस्य है, वहाँ भगवती लक्ष्मीका वास है।

जहाँ सौन्दर्य है, वहाँ भगवती लक्ष्मीका वास है। जहाँ प्रेम है, वहाँ भगवती लक्ष्मीका वास है। जहाँ उदारता है, वहाँ भगवती लक्ष्मीका वास है। जहाँ समृद्धि है, वहाँ भगवती लक्ष्मीका वास है। जहाँ आदर्श गृहस्थ है, वहाँ भगवती लक्ष्मीका वास है।

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणाश्रयायै।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै॥

यज्ञादि शुभ कर्मोंके फलको प्रकट करनेवाली श्रुतिरूपिणी, सुन्दर गुणोंकी आश्रयभूता रति-रूपिणी, कमलवासिनी शक्तिरूपिणी और पुरुषोत्तम विष्णुकी प्रियतमा पुष्टिरूपिणी लक्ष्मीको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। **[श्रीमदादिशंकराचार्यकृत कनकधारास्तोत्र]**

श्रीरामचरितमानसमें रावण-प्रबोधके प्रसंग

(पद्मश्री प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र, पूर्व कुलपति—सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)

लंकापति रावण-जैसा वेदज्ञ, रणशूर एवं शिवभक्त चरित्र सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मयमें दूसरा और कोई नहीं, परंतु अपने अहंकार एवं तज्जन्य हठमात्रके कारण वह अन्ततः नष्ट हो गया। मर्यादापुरुषोत्तम रामने उसे बार-बार आत्मशोधनका अवसर प्रदान किया, परंतु अपनी कामासक्ति एवं अहमितिके कारण वह आत्मत्राण नहीं कर सका।

महर्षि पुलस्त्यका पौत्र एवं महामुनि विश्रवाका औरस पुत्र होते हुए भी रावण अपने मातृदोषके कारण राक्षस-निसर्ग बना। उसका वह स्वभाव ही उसके अभ्युदयमें बाधक बना। घोर तपस्यासे विधाताको प्रसन्न करनेके बाद भी रावणने कोई सात्त्विक वर नहीं माँगा—

करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा॥
हम काहू के मरहिं न मारें। बानर मनुज जाति दुइ बारें॥

इस वर-प्रतापके अनन्तर ही रावणका 'रावणत्व' प्रारम्भ होता है। उसने यक्षोंको खदेड़कर लंकापर अधिकार कर लिया, अपने ही वैमातृक बन्धु कुबेरसे पुष्पक विमान छीन लिया तथा देवोंके विरुद्ध आतंक एवं अत्याचारकी दुन्दुभि फूँक दी—

एहि बिधि सबही अग्या दीन्ही। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही॥
चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्त्रवहिं सुर रवनी॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा॥
ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥

गोस्वामी तुलसीदासजीने रावणके लोकविरोधी कृत्योंका अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। उसने किसीको स्वतन्त्र नहीं रहने दिया। देवों, यक्षों, किन्नरों, गन्धर्वों नागोंकी रूपवती कन्याओंका बलपूर्वक अपहरण कर लिया तथा अपने अनुचरोंको भी हर प्रकारके लोकविरोधी कृत्योंकी खुली छूट दे दी।

करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहि बिधि होइ धरम निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना॥

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥

रावणके इन्हीं आतंकोंसे मुक्ति देनेके लिये भगवान् श्रीहरिने दशरथनन्दन रामके रूपमें अवतार लिया। रावणने उनकी सहधर्मिणी देवी वैदेहीका छलपूर्वक हरण किया और मरणान्तक संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। वस्तुतः देव-संस्कृति-विरोधी रावण अपना आत्मविश्वास खो चुका था। वह जानता था कि इस तमोगुणी देहसे अब हरिभक्ति होनी कठिन है, अतः उनसे शत्रुता करना ही उसने आत्मोद्धारका एकमात्र प्रशस्त मार्ग चुना—

खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ॥
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥

इस दुस्संकल्पके साथ रावण अपना पापाचार प्रारम्भ करता है तथा अपने मामा मारीचके पास पहुँचता है सीताहरणमें उसे सहायक बनानेके लिये। परंतु ताड़का-पुत्र मारीच तो, मात्र पन्द्रह वर्षके कुमार वयमें ही, रामका पराक्रम देख चुका था। उसे अभी भी स्मरण था अपनी जन्मदात्री ताड़का एवं सहोदर सुबाहुका वध। वह रावणका प्रथम प्रबोधक बनता है—

तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥
तासों तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआएँ जीजै॥
मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत जोजन आयउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं॥
भइ मम कीट भृंग की नाई। जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा॥

जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥
जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी॥
गुरु जिमि मूढ करसि मम बोधा। कहु जग मोहिं समान को जोधा॥
तब मारीच हृदयँ अनुमाना। नवहि बिरोधें नहिं कल्याना॥

सीताहरणमें सहायक बना मारीच अन्ततः मारा जाता है। विरही राम उन्मत्तोंकी तरह सीताका अन्वेषण करते ऋष्यमूक पर्वतपर पहुँचते हैं, जहाँ उनकी मैत्री वानरराज सुग्रीवसे होती है। राम अन्यायी वालीका वध करते हैं तथा सुग्रीवको किष्किन्धाके सिंहासनपर अभिषिक्त करते हैं। वर्षा-ऋतु बीतते ही सीतान्वेषणका कार्य प्रारम्भ हो जाता है। युवराज अंगदके नेतृत्वमें दक्षिण दिशामें प्रस्थित वानर-दलको तब सफलता मिलती है, जब दलके सदस्य हनुमान् सागर लाँघकर लंका जा पहुँचते हैं—गिद्धराज सम्पातीके निर्देशपर! वे देवी सीताको भगवान् रामकी मुद्रिका एवं सन्देश देते हैं तथा उनकी चूड़ामणि तथा प्रतिसन्देश लेकर लौटते हैं। लौटनेसे पूर्व हनुमान् अशोकवनका विध्वंस, रावणपुत्र अक्षयकुमारका वध तथा लंकादहन भी करते हैं।

रावणका ज्येष्ठपुत्र महाबली मेघनाद आंजनेयको नागपाशमें बाँधकर रावणके समक्ष प्रस्तुत करता है। दोनोंके बीच लम्बी वार्ता होती है। इस अवसरपर श्रीहनुमान्‌जी रावणके द्वितीय प्रबोधक बनते हैं—

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥
जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥
प्रनतपाल रघुनायक करुनासिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥
राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥
राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥
राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गएँ पुनि तबहिं सुखाहीं॥
सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥
मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥
जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी॥
बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥

रावणको समझाने-बुझानेवाला तीसरा व्यक्ति स्वयं उसकी धर्मपत्नी शुद्धहृदया मन्दोदरी है। वह जानती है कि परनारीका हरणकर रावणने अपनी मृत्यु ही आमन्त्रित की है। फलतः वह सीताको लौटानेका आग्रह करती है—

दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी॥
रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥
समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥
तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥
राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक॥
श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥
कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥

रावणने पत्नीकी बातको भी हँसकर टाल दिया और जाकर दरबारियोंसे सलाह-मशविरा करने लगा। उसके अवसरवादी सचिवोंमें तो सत्य कहनेका साहस ही नहीं बचा था। यही कारण था कि

बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माँहीं॥

उसी अवसरपर विभीषण भी पधारे। रावणने विभीषणकी भी राय जाननी चाही। विभीषण नीतिविद्, धर्मप्रवण एवं भाईके शुभाकांक्षी थे। फलतः उन्होंने सत्परामर्श दिया। रावणको प्रबोधित करनेवाले वे चौथे

व्यक्ति हैं।

जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता॥
जौ आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥
चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनुधारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥
ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥
सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥
बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥

विभीषणने रावणसे यह भी कहा कि जो कुछ मैंने आपसे कहा, वह मेरी अपनी बात नहीं है, प्रत्युत महर्षि पुलस्त्यने भी आपके लिये अपने शिष्यसे यही सन्देश भेजा है। मन्त्री माल्यवन्तने भी विभीषणके प्रस्तावका पूर्णत: समर्थन किया और रावणसे निवेदन किया कि वह विभीषणके प्रस्तावको मान ले, परंतु कालमुख-पतित रावण जलभुन उठा और बोला—

रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥

इस अपमानसे क्षुब्ध होकर माल्यवान् तो तत्काल अपने घर चला गया, परंतु स्नेहकी डोरीमें बँधे विभीषणने एक बार पुन: भाईको समझानेका यत्न किया—

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी॥
तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥

परंतु इस बारका उपदेश असहिष्णु रावणके लिये कालकूट-सा लगा और उसने विभीषणपर पादप्रहार करते हुए लंकासे तत्काल निकल जानेको कहा। अपमानित एवं कदर्थित विभीषण अपने सचिवोंके साथ रामकी शरणमें चले गये।

विभीषणके लंका त्याग देनेपर, रावणने यथार्थ जाननेके लिये शुक तथा सारण नामक दूतोंको रामकी सेनामें भेजा। वे दोनों वानर-रूप धारणकर सब कुछ जानते-सुनते रहे, परंतु अन्तत: पकड़े गये। सेनापति सुग्रीवने तो उनका अंग-भंग करनेका आदेश ही दे दिया था, परंतु कुमार लक्ष्मणने उन्हें कृपापूर्वक मुक्त करा दिया तथा एक पत्रके साथ उन्हें पुन: रावणके पास भेज दिया। शुक और सारणने वानरसेनाका लोमहर्षक चित्रण किया, राम-लक्ष्मणके उदात्त व्यक्तित्वकी प्रशंसा करते हुए रावणको समझाया—

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥
अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥
जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥
नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥

इस प्रकार शुक रावणको प्रबोधित करनेवाला पाँचवाँ व्यक्ति है।

सेतु बँध गया और भगवान् राम वानरसेनाके साथ लंकाकी भूमिमें प्रविष्ट भी हो गये। परंतु युद्ध अभी भी घोषित नहीं था। राजमहिषी मन्दोदरी एक बार पुन: अपने 'अहिवात'की भीख माँगती है—

कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी॥
चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥
नाथ बयरु कीजे ताहीं सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों॥
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥
अतिबल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे॥
जेहिं बलि बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥
तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा॥
रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ॥

मन्दोदरी रोती-बिलखती रही, परंतु अभिमानी रावण उसे अपनी देवविजय-गाथा सुनाता रहा। उसने पुन: मन्त्रियोंसे परामर्श किया और मन्त्रीगण पहलेकी ही तरह उसे मिथ्या प्रशंसाओंसे आनन्दित करते रहे—

कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु पूछहु काहा॥
कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥

परंतु रावणके विवेकी पुत्र प्रहस्तको मन्त्रियोंकी यह मिथ्या प्रशंसा तिलभर भी नहीं रुची। उसने साहसपूर्वक पिताके समक्ष कड़वी सच्चाई रखी और रघुनन्दनसे सन्धि करनेका प्रस्ताव किया। वह छठा व्यक्ति है रावणको प्रबोधित करनेवाला—

सबके बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि॥
कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती॥
बारिधि नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सबु गावा॥
छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू॥
तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर॥
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥
बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती॥
नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तो न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सन्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई॥
अबहीं ते उर संसय होई। बेनुमूल सुत भयहु घमोई॥

प्रहस्तको खरी-खोटी सुनाकर, रावण मन्दोदरीके साथ मल्लशालामें जा बैठता है—मनोरंजनके लिये। भगवान् राम उसका अभिमान क्षीण करनेके उद्देश्यसे शरसन्धान करते हैं। सन्धनित शर रहस्यमय ढंगसे रावणके छत्र, मुकुट एवं मन्दोदरीके कर्णाभूषणोंको एक ही साथ धराशायीकर तूणीरमें लौट आता है। इस भयावह अपशकुनसे रावणकी सभा आतंकित हो उठती है।

यह अपशकुन रानी मन्दोदरीको अशान्त बना देता है। उसकी आँखोंमें अविरल अश्रुधारा है और हृदयमें एक बद्धमूल भय। उसे अपना 'सौभाग्य' खण्डितप्राय दीखने लगता है। वह रामके विराट् भगवत्स्वरूपसे परिचित है और अपने अभिमानी पतिको भी इसी तथ्यका विश्वास कराना चाहती है। रावणको समझानेका, उसका यह तीसरा प्रयास है—

मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥
सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥
पद पाताल सीस अजधामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घनमाला॥
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥
रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥
अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥

पत्नीका यह भगवत्तत्त्व-विवेचन मदान्ध रावणको बिलकुल नहीं भाता। वह उसका उपहास करता हुआ महिलाओंके आठ अवगुण गिनाने लगता है। मन्दोदरीको विश्वास हो गया कि उसका पति अब पूर्णत: कालके वशमें है और उसका मतिभ्रम किसी भी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता।

युवराज अंगद लंकापति रावणको समझाने-बुझानेवाला सातवाँ पात्र है श्रीरामचरितमानसमें। परंतु अंगदका प्रबोध अन्य सन्दर्भोंकी तुलनामें विलक्षण है। यह प्रबोध विनम्र अभ्यर्थनासे प्रारम्भ होता है, परंतु समाप्त होता है भरी सभामें रावणकी अवमानना, कदर्थना एवं मानभंगसे।

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर॥

मम जनकहिं तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई॥
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा॥
नृप अभिमान मोहबस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदंबा॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा॥
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनकसुता करि आगें। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें॥

प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि॥

युवराज अंगदकी वचनावलीमें निश्चय ही रावणके प्रति अमर्ष एवं धिक्कृतिका भाव था। अत: विवाद बढ़ता ही गया। अन्तत: युवराज अंगदने रावणके पापोंका घड़ा उसके दरबारमें ही फोड़ा तथा उसके महाविनाशकी घोषणा करते हुए वे भगवान् श्रीरामके पास लौट आये।

पट्टमहिषी मन्दोदरीने चौथी और अन्तिम बार रावणको समझानेका यत्न किया, परंतु इस बारके प्रबोधमें उसने भी खुलकर पतिके थोथे अभिमानकी कलई खोली—

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही॥
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥
पिय तुम ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा॥
कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी असंका॥
रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा॥
जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा॥
अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुलबल जानहु॥
बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा॥
जनक सभाँ अगनित भूपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥
भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जिअत आँखि गहि फोरा॥
सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी॥

बधि बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध।
बालि एक सर मार्‍यो तेहि जानहु दसकंध॥

अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥
काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं॥

दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु॥

मन्दोदरीकी बातें पैने तीरकी तरह रावणके हृदयमें चुभ गयीं। वह जल-भुन उठा, कुछ बोला नहीं। पुन: जाकर राजसभामें बैठ गया।

अब युद्ध अनिवार्य था। अगले दिन भयावह समर प्रारम्भ हो गया। वानरसेनाने लंकाके चारों द्वारोंको घेर लिया तथा अंगद-हनुमान्ने रावणके राजमहलको पूर्णत: विध्वस्त कर दिया तथा असंख्य योद्धाओंको मार गिराया। भयभीत रावणने पुन: रातमें सचिवोंकी सभा बुलायी, युद्धनीतिके निश्चयार्थ।

रावणका नाना माल्यवन्त तो विभीषणके सन्दर्भमें ही अपमानित हो चुका था, परंतु युद्धकी विभीषिकाको उपस्थित देख वह एक अन्तिम प्रयास करता है। रावणको समझानेवाला वह आठवाँ पात्र है श्रीरामचरितमानसमें।

माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर॥
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥
जब ते तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी॥
बेद पुरान जासु जसु गायो। राम बिमुख काहुँ न सुख पायो॥

हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधुकैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥
कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥

परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
ताके बचन बान सम लागे। करिआ मुह करि जाहि अभागे॥
बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥

अन्तत: रामविमुख रावण समरांगणमें भगवान् रामद्वारा मारा गया। राजरानी मन्दोदरीने पतिके विषयमें 'परमार्थ' व्यक्त किया—

राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥

आत्मविकासके सोलह सूत्र

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी, सम्पादक 'अध्यात्म-अमृत')

प्रकृति एवं परमात्मा प्रत्येक व्यक्तिको अपने परिवार एवं समाजकी प्रगतिके समान अवसर प्रदान करते हैं, इनमें कुछ व्यक्ति अपने पुरुषार्थ, कर्तव्यनिष्ठा, समर्पण एवं साहससे स्वयं अपनेको, परिवारको तथा समाजको उच्च शिखरपर ले जाते हैं और कुछ व्यक्ति आलस्य, अनैतिकता, हिंसा, व्यभिचार आदि दुष्कर्मोंके कारण स्वयंको, परिवारको अवनतिके गर्तमें ढकेल देते हैं। यह सत्य है कि जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है। अपने साथ कोई धन-सम्पत्ति तो ले जा नहीं सकता, कर्म ही मनुष्यके साथ जाते हैं। इसलिये धन-सम्पत्तिका संग्रह करनेके बजाय अधिक-से-अधिक सत्कर्म करना मनुष्यका कर्तव्य है। उसे अपने कार्यको पूर्ण ईमानदारी, योग्यता, सामर्थ्य, लगन, उत्साहपूर्वक करना चाहिये, जिससे उसके सत्कर्मों एवं सद्‌गुणोंके कारण उसकी स्मृति चिरस्थायी रहे। सन्त कबीरने कहा है—

कबिरा हम पैदा हुए जग हँसा हम रोये।
ऐसी करनी कर चलो हम हँसें जग रोये॥

वर्तमानमें कोरोना वायरस महामारीने सभीको भलीभाँति यह अहसास करा दिया है कि हमारा जीवन कितना क्षणभंगुर है। कवि श्रीनाथूलाल अग्निहोत्री 'नम्र'जीने कहा है—

क्षणभंगुर जीवन की कलिका कल प्रात को जाने खिली न खिली।
मलयाचल की शुचि शीतल मंद सुगंध समीर चली न चली॥

यह जानते हुए भी हम ईश्वर एवं प्रकृतिकी अवहेलना क्यों कर रहे हैं? अपने ऐश-आराम तथा सम्पत्तिकी वृद्धिके लिये अनेकानेक अनैतिक कार्योंसे नित्य धनोपार्जन क्यों कर रहे हैं? आज तो बस यही स्थिति है—

छलनामय संसार व्यवस्था छल कपटों की आज हो रही।
मानव का विकराल रूप लख मानवता दिन-रात रो रही॥

प्रकृति-दोहन और जीवन-मूल्योंकी अवहेलनाके कारण प्राकृतिक आपदाएँ तथा महामारी आदिका प्रकोप निरन्तर बढ़ रहा है; क्योंकि आज सर्वत्र अनैतिकता, अनुशासनहीनता, कामुकता, स्वार्थ आदिका बोलबाला है। इसे रोकनेके लिये हमें प्रकृतिका सम्मान तथा सही उपयोग करना होगा, तभी हमें स्वच्छ वायु एवं जल सुलभ हो सकेंगे और प्राकृतिक आपदाएँ नहीं आयेंगी। उत्तम चरित्र एवं स्वास्थ्यके लिये अपने आचरणको सात्त्विक बनाना होगा। आत्मविकासके लिये दुर्गुणोंको त्यागकर जीवनमें 'स' अक्षरसे आरम्भ होनेवाले सोलह सद्‌गुणोंको अपनाना होगा। इन सद्‌गुणोंको अपनाकर हम अपने जीवनको सुखी, सफल एवं समृद्ध बनाकर समाज एवं राष्ट्रकी भी उन्नतिमें अपना पूर्ण सहयोग प्रदान कर सकते हैं। इन सद्‌गुणोंकी व्यावहारिक शिक्षा बचपनसे ही दी जानी चाहिये। ये सोलह सद्‌गुण इस प्रकार हैं—

(१) सत्य—मानसमें तुलसीदासजीने कहा है—***'धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥'***

सत्य ईश्वरका स्वरूप—***'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'*** महाभारतके मौसलपर्वमें भीष्मपितामहने कहा कि मानवमात्रका धर्म सत्य है, सत्य ही शाश्वत कर्म है, यही सर्वोच्च त्याग एवं तप है और यही सबसे बड़ा योग है। कबीरदासजीने कहा है—

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है ताके हिरदै आप॥

झूठसे तत्काल लाभ मिलता तो प्रतीत होता है, परंतु वह स्थायी नहीं होता। सत्यधर्मका पालन करनेवालोंके लिये कहा है—

सत्य धर्म जो पालन करहीं, नाहीं भवके दुःख नर परहीं॥

(२) सदाचार—सदाचारका अर्थ है सदाचरण, धर्मपरायणता, नेकचलनी। जो मनुष्य सदाचारी है, वह जीवनमें सदा सुख पाता है। दुराचारीको कभी मनकी शान्ति नहीं मिलती। दुराचारी तो स्वस्थ भी नहीं रह सकता। मानवशरीरमें जितने रोग उत्पन्न होते हैं, वे अनुचित रहन-सहन और खान-पान तथा बुरे कर्मोंके कारण ही होते हैं। अतः यदि मनुष्यको सच्चे सुख और शान्तिकी अभिलाषा है तो उसे सदाचारी बनना ही पड़ेगा।

(३) सत्संग—सत्संग एक ऐसी पाठशाला है, जहाँ हमारे दूषित विचार समाप्त होते हैं तथा शुद्ध विचारोंका निर्माण

होता है। मानस (५।४)-में सत्संगके प्रति लिखा है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

नवधा भक्तिके नौ सोपानोंमें भी मानसमें तुलसीदासजीने सर्वप्रथम सोपान सत्संगको ही बताया है—

प्रथम भगति संतन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥

(४) संस्कृति—भारतीय संस्कृति सनातन है, अनादि है। संस्कृति देशकी आत्मा होती है और सभ्यता उसका शरीर है। संस्कृति राष्ट्रकी जीवनदृष्टि है और सभ्यता उसकी जीवन-शैली है। सभ्यता बाह्य आचरण, व्यवहार, रहन-सहन, वेशभूषा, भौतिक मूल्य आदि है, जबकि संस्कृति वह जीवनदायिनी शक्ति है, जिसके बलपर कोई राष्ट्र अपनी अस्मिताको प्रकट कर पाता है। मनुष्यके जीवनमें अथवा राष्ट्रके जीवनमें जब-जब संकट उपस्थित होता है अथवा चुनौतियाँ आती हैं, तब-तब उनका समाधान एवं मार्गदर्शन राष्ट्र अपनी संस्कृतिके अनुसार ढूँढ़ता है। भारतीय संस्कृतिकी सबसे बड़ी विशेषता उसकी चिन्तन-परम्परा रही है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति ज्ञानके शिखरपर पहुँच गयी और ज्ञानके क्षेत्रमें आज भी विश्वका नेतृत्व करनेयोग्य है। हमारी संस्कृतिमें सबके मंगलकी कामना की गयी है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

(५) संयम—संयमसे तात्पर्य है इन्द्रियोंको वशमें करना। मन, वचन और कर्म—तीनोंके द्वारा चित्तवृत्तियोंपर अनुशासनका नाम संयम है। आज जीवनमें पवित्रता एवं संयमके स्थानपर स्वार्थलोलुपता एवं कामान्धता बढ़ रही है। मदिरापान, मांससेवन, व्यभिचार, हिंसा, कामुकताका प्रचलन दिनोंदिन बढ़ रहा है, परिणामस्वरूप दुर्व्यसनोंके कारण मानव अनेक रोगोंका शिकार हो रहा है। जीवनको मधुर, उल्लासमय और आनन्दमय इन्द्रियोंपर संयम रखकर ही बनाया जा सकता है।

(६) संस्कार—भावी पीढ़ी सुसंस्कारी बने, इसके लिये माता-पिताको विशेष सावधानी बरतना आवश्यक है; क्योंकि संस्कारवान् बालकसे ही परिवार संस्कारित बनता है, संस्कारित परिवारोंसे ही सुसंस्कृत समाज एवं राष्ट्रका निर्माण होता है। हिन्दू जीवन-पद्धतिमें सोलह संस्कार मुख्यतः प्रवर्तित हुए, जिनके नाम हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त समावर्तन, विवाह, विवाहाग्निपरिग्रह एवं अन्त्येष्टि-संस्कार।

उपर्युक्त सोलह संस्कार अत्यन्त प्राचीनकालसे हमारे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवनकी आधारशिला रहे हैं और यह कथन अतिरंजित न होगा कि जबतक संस्कारोंका विधान हमारे जीवनमें चरितार्थ रहा, हमारा देश अपनी सांस्कृतिक गरिमा एवं नैतिकताके उच्च आदर्शोंसे ओतप्रोत रहा, उत्कृष्टताके कारण जगद्गुरुके महनीय सिंहासनको अलंकृत करता रहा, किंतु कालक्रमसे ज्यों ही इन संस्कारोंका ढाँचा चरमराने लगा, त्यों ही वह पतनोन्मुख होता गया।

(७) साधना—साधनाका शाब्दिक अर्थ है अपने आपको साधना अर्थात् मन, प्राण, शरीर और इन्द्रियोंको वशमें करना—अपने विचार, वाणी और कर्मको सही दिशामें नियोजित करना है। साधना और ध्यान है—अपने भीतर छिपे सत्यकी खोज, भगवान्‌की खोज, अपने आपको जानना। बड़ा आश्चर्य है कि साधनाके वास्तविक अर्थको समझे बिना ही साधक साधना कर रहे हैं। साधनाका मूल आधार है वैराग्य। वैराग्य गृहत्यागसे नहीं सधता, यह जगत्‌के प्रति आसक्तिके त्यागसे सधता है। यदि आपके विचार, वाणी और कर्ममें कुछ सुधार नहीं हो रहा है, आप कामनाओंके पीछे सदा भाग रहे हैं, नीति-अनीतिसे सम्पत्तिका संग्रह तथा धनोपार्जन कर रहे हैं तो आप साधनामें सफल नहीं हो सकते, बल्कि अपने दुराचरण, दुष्कर्म, अनैतिकताको त्यागकर ही साधनामें सफल हो सकते हैं।

(८) सेवा—जन्मसे मृत्युपर्यन्त मनुष्यका जीवन दूसरोंपर आश्रित है, अतः एक-दूसरेकी निःस्वार्थ सेवा करना चाहिये। माता-पिता, पुत्र, पुत्री, भाई, बहन, मित्र, निर्धन व्यक्ति आदि सबकी सेवा निःस्वार्थ भावसे करना चाहिये। सेवा करके भूल जाओ, यही सच्ची सेवा है। स्वामी विवेकानन्दने कहा था—'भारतके राष्ट्रीय आदर्श हैं सेवा और त्याग। कर्तव्य, सेवा, दया, परोपकारके रूपमें स्थित धनसे तिजोरियाँ भर लो, यही धन साथ जानेवाला है।'

(९) सकारात्मक सोच—जीवनमें सकारात्मक सोच रखकर ही अपने जीवनको सार्थक, प्रसन्न और मधुर बनाया जा सकता है। सफलताके शिखरपर पहुँचनेके लिये सकारात्मक सोच अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्तिकी बातको अच्छे नजरियेसे सुनना तथा अपने कार्यको सही तरीकेसे उत्साहपूर्वक करना ही सकारात्मक सोच है। ऐसी सोच नहीं होनेसे जो व्यक्ति जिस कार्यको कर रहा है, वह उस कार्यसे खुश नहीं होता। नौकरीवालेको जीवन पराधीन लगता है, उसे व्यापारवालेका जीवन स्वतन्त्र लगता है। यह नकारात्मक सोचका परिणाम है। उन्नति करनेके अवसर सबको मिलते हैं, किंतु सकारात्मक सोचवाले व्यक्ति ही अवसरका लाभ उठाते हैं और उन्नति करते हैं।

(१०) सन्तोष—आत्मशान्तिके लिये सन्तोष ही प्रबल धन है। असन्तोषीके लिये संसारकी समस्त विभूतियाँ भी अपर्याप्त हैं। कबीरदासजीका कहना है—

गोधन गजधन बाजिधन, और रतनधन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान॥

सन्तोषी वही है, जो सुख-दु:ख प्रत्येक परिस्थितिमें सन्तुष्ट रहता है। परंतु सन्तोषका यह अर्थ नहीं कि जो है, उसे ही पर्याप्त मान लिया जाय, अधिक प्रगति एवं सफलताके लिये प्रयत्न ही नहीं किया जाय। ऐसा सन्तोष तो अकर्मण्यताका पर्याय हो जायगा।

(११) स्वाध्याय—स्वाध्याय शब्दका अर्थ है, अपना अध्ययन, स्वयंको जाननेकी खोज, आत्मचिन्तन और आत्मविश्लेषण। वेदान्तमें आत्मचिन्तन या स्वाध्यायके लिये श्रेष्ठतम सूत्र है श्रवण, मनन, निदिध्यासन। श्रवणका अर्थ है सुनना, सत्संग करना। सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय, मनन-चिन्तनकर अपनी चित्तवृत्तियोंके शोधन करनेकी प्रक्रिया निदिध्यासन है। जिस तरह पानीसे शरीरकी शुद्धि, भक्तिसे मनकी शुद्धि तथा ज्ञानसे चित्तकी शुद्धि होती है, उसी प्रकार स्वाध्यायसे बुद्धिका परिमार्जन होता है।

(१२) सहयोग—'योग'का अर्थ है जोड़ना और 'सह'का अर्थ है साथ अर्थात् सहयोगका अर्थ है अपने साथ जोड़ना। 'सहयोग दो-सहयोग लो', इस सूत्रको प्रत्येक व्यक्तिको अपने जीवनमें अपनाना चाहिये। सहयोगसे बड़ी-से-बड़ी समस्याको सुलझाया जा सकता है। विपत्तिके समय अपने रिश्तेदारों, मित्रों एवं पड़ोसियोंको सहयोग देकर, उनके दु:खमें सहभागी बनकर उन्हें धैर्य धारण कराना हमारा परम कर्तव्य है। हमें एक-दूसरेके साथ मिल-जुलकर सौहार्दपूर्ण वातावरणका निर्माण करते हुए 'हम सबके सब हमारे' का मन्त्र जीवनमें उतारना चाहिये।

(१३) संकल्प—जीवनमें सफलताके लिये आत्मविश्वास और पुरुषार्थके साथ संकल्प-बल भी होना चाहिये। जिस कार्यका संकल्प करें, उसकी सिद्धितक पूर्ण प्रयास करना चाहिये। चाहे जितने प्रलोभन या कठिनाइयाँ आयें, लेकिन कार्यको अधूरा नहीं छोड़ना चाहिये। बालक ध्रुव तथा प्रह्लादकी तपस्या इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

(१४) समर्पण—समर्पणका अर्थ है—पूर्णरूपेण प्रभुको हृदयमें स्वीकार करना, उनकी इच्छाओं—प्रेरणाओंके प्रति सदैव समर्पित रहना। वस्तुत: जिसने मन, वचन, कर्मसे भगवान्‌के प्रति समर्पण कर दिया, उसे भगवान्‌का सतत सान्निध्य प्राप्त हो जाता है।

(१५) सत्साहस या निर्भयता—निर्भयताको गीताने दैवी सम्पत्तिके रूपमें प्रथम स्थान दिया है। तुलसीदासजीने इसे धर्मरथका पहिया माना है। यह एक आध्यात्मिक गुण है, जो सफलताका आधार होता है।

(१६) समता—समताका अर्थ सबके प्रति समान भावना है। विश्वमें अनेक धर्म, सम्प्रदाय, समाज, जातियाँ आदि हैं। सबके भिन्न-भिन्न उद्देश्य, नियम, दृष्टि-कोण तथा परम्पराएँ हैं। विवेकशील व्यक्ति अपने परिवार, कार्यालय तथा समाजके प्रत्येक सदस्यके साथ अपना व्यवहार समान रखता है। वह किसीके प्रति भेद-भाव, ऊँच-नीचका बर्ताव नहीं करता। 'वसुधैव कुटुम्बकम्'-की भावना रखते हुए हमें सबके प्रति अपना व्यवहार मधुर ही नहीं, अपितु मधुरतम बनाकर, राग-द्वेषकी भावनाको त्यागकर अपने व्यवहारको सरल, कोमल तथा उदार बनाना चाहिये।

इन सद्गुणोंको जीवनमें अपनाकर देखें, आपका जीवन-वृक्ष शान्ति, सन्तोष, समृद्धिके मधुर फलोंसे परिपूर्ण हो जायगा।

तीर्थ-दर्शन—

तमिलनाडुका कन्याकुमारी शक्तिपीठ

(श्रीसुदर्शनजी अवस्थी)

पौराणिक आख्यान है, एक बार बाणासुर नामक असुरने भगवान् शिवशंकरकी कठिन तपस्या की और अमरत्वका वर माँगा। उसको वर देते समय शिवने एक शर्त रखी थी कि तुम कुमारी कन्याके अतिरिक्त अन्य सबसे अजेय रहोगे। शिवका वर मिलनेके बाद उसने खूब उपद्रव एवं उत्पात करने शुरू कर दिये। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। इससे सभी देवता भयभीत हो गये। तब उसके उत्पातसे पीड़ित देवता भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। विष्णुके कथनानुसार एक महायज्ञका आयोजन किया गया। उस यज्ञमें हवन करनेपर यज्ञकुण्डकी चिद् (ज्ञानमय) अग्निसे दुर्गाजी अपने एक अंशसे कन्यारूपमें प्रकट हुईं। बड़ी होनेपर उस कन्याने भगवान् शंकरको वररूपमें पानेके लिये दक्षिण समुद्रके तटपर कठोर तपस्या की। उस कन्याके तपसे भगवान् शिव बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने उसके साथ पाणिग्रहण स्वीकार किया। देवोंको फिर चिन्ता सताने लगी कि यदि विवाह हो गया तो बाणासुरका वध होना कठिन हो जायगा। इस कार्यको रोकनेका दायित्व ऋषियोंने नारदको सौंपा। नारदने शुचीन्द्रम् नामक स्थानपर (चार-पाँच कि०मी०के अन्तरपर) अनेक प्रपंचोंमें उलझाकर रातभर शिवजीको रोक रखा। विवाहका मुहूर्त टल गया और प्रात:काल उपस्थित हो गया। भगवान् वहीं स्थाणुरूपमें स्थित हो गये तथा देवताओंकी युक्ति काम कर गयी।

ऐसा कहा जाता है कि अपना मनोरथ पूरा न होनेके कारण देवीने वहाँपर पुन: तप करना शुरू कर दिया। अभी भी वे वहाँ कुमारीरूपसे तपमें संलग्न हैं। बाणासुरने अपने दूतोंसे तपस्यारत देवीके अद्भुत सौन्दर्यकी ख्याति सुनी, तो उससे विवाहके लिये हठ शुरू कर दिया। जब वह नहीं मानी, तो बाणासुरने उससे युद्ध शुरू कर दिया। उस कुमारीका बाणासुरसे भयंकर युद्ध हुआ। इसमें बाणासुर मारा गया। तब जाकर देवता उसके भयसे मुक्त हो गये।

महाभारतके वनपर्वमें कन्याकुमारीतीर्थकी महिमा बताते हुए कहा गया है—

ततस्तीरे समुद्रस्य कन्यातीर्थमुपस्पृशेत्।
तत्तोयं स्पृश्य राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अर्थात् महर्षि पुलस्त्यजी भीष्मपितामहसे कहते हैं—हे राजेन्द्र! [कावेरीमें स्नान करके] तत्पश्चात् समुद्रके तटपर विद्यमान कन्यातीर्थ (कन्याकुमारी)-में जाकर स्नान करे। उस तीर्थमें स्नान करते ही मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

श्रीमद्भागवत-महापुराणके अनुसार अगस्त्यजीसे आशीर्वाद और अनुमति प्राप्त करके बलरामजीने दक्षिण समुद्रकी यात्रा की और वहाँ उन्होंने देवी दुर्गाका कन्याकुमारीके रूपमें दर्शन किया—

दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः॥

(श्रीमद्भा० १०।७९।१७)

कन्याकुमारी एक अन्तरीप (समुद्रमें स्थित भूमि) है। यह हिन्दमहासागर, अरबसागर और बंगालकी खाड़ीका सम्मिलन-स्थल है। दक्षिण तटपर जहाँ तीनों समुद्र मिलते हैं, वहाँका दृश्य देखनेयोग्य है; क्योंकि अरबसागर, बंगालकी खाड़ी एवं हिन्दमहासागर देखनेका आनन्द यहाँ ही मिलता है। ऐसा अन्यत्र कहीं भी भारतमें अवसर प्राप्त नहीं होता। यहाँपर बंगालकी खाड़ीके समुद्रमें सावित्री, सरस्वती, गायत्री और कन्याविनायक इत्यादि तीर्थ हैं। कन्याकुमारी मन्दिरके दक्षिणमें मातृतीर्थ, पितृतीर्थ और भीमातीर्थ हैं। पश्चिममें थोड़ी दूरीपर स्थाणुतीर्थ है। यह भी प्रसिद्धि है कि जो जल शुचीन्द्रम्मे शिवलिंगपर चढ़ाया जाता है, वह वहाँसे रिस-रिसकर भीतर-ही-भीतरसे पुनः समुद्रमें कन्याकुमारीके मन्दिरके पास आकरके मिलता है।

कन्याकुमारीका मन्दिर समुद्रतटपर स्थित है। इसी

स्थानपर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीकी अस्थियाँ भी प्रवाहित की गयी थीं और समाधि भी बना करके रखी गयी है। एक विशेष बात यह है कि दो अक्टूबरको सूर्यकी पहली किरणका प्रकाश सर्वप्रथम गाँधीजीकी समाधिपर ही पड़ता है। कन्याकुमारी देवीके दर्शनार्थ आनेवाले श्रद्धालु स्नानकर पहले गणेश-मन्दिरमें गणेशजीके दर्शनके लिये जाते हैं। यह भी प्रथा है कि गणेशजीके दर्शनके पश्चात् पुरुष केवल एक वस्त्र धोती पहनकर और महिलाएँ साड़ी पहन करके कन्याकुमारीके दर्शन करती हैं। अन्यथा पुजारी अन्दर जाने नहीं देते हैं। भीतर जानेके लिये कई द्वार हैं। उनको पार करके कन्याकुमारी देवीके दर्शन किये जा सकते हैं। देवीकी प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर, प्रभावोत्पादक एवं भव्य है। देवीके हाथमें जपमाला दिखायी देती है। विशेष उत्सवोंपर देवीका हीरोंसे श्रृंगार किया जाता है। देवीकी नाकके आभूषणमें हीरा जड़ा हुआ है। उसके दर्शनका बहुत ही महत्त्व बताया जाता है। पहले जिस ओरसे यह हीरा दिखायी देता था, रात्रिके समय उस ओरसे आनेवाले जहाज चट्टानसे टकरा करके चूर-चूर हो जाते थे। इस कारण उस ओरवाला द्वार अब बन्द रहता है। अधिक प्रकाश रातके समय होता है। इस कारण रात्रिके समय अवश्य दर्शन करने चाहिये। रातको वैसे भी विशेष श्रृंगार होता है। मन्दिरकी उत्तरी दिशामें भद्रकालीका मन्दिर है। इनको देवीकी सखी कहा जाता है। इस स्थानको सिद्धपीठ माना गया है; क्योंकि यहाँ सतीका पृष्ठभाग गिरा था। यहाँकी देवी नारायणी और भैरव स्थाणु हैं। यहाँ और भी कई विग्रह हैं। थोड़ी दूरीपर 'पापविनाशनम्' पुष्करिणी है, यह सागरतटपर स्थित मीठे जलकी बावली है। यात्री इसके जलसे भी स्नान करते हैं। इसको मण्डूकतीर्थ भी कहते हैं। यहाँके तटपर काली, लाल एवं सफेद रेत मिलती है। इसको लोग अपने साथ यादके लिये ले जाते हैं। इन रेतोंके दाने चावलोंके समान लगते हैं। कहते हैं कि देवी कन्याकुमारी और भगवान् शिवके विवाहके लिये प्रस्तुत तिल, अक्षत और रोली ही विवाह न हो पानेकी स्थितिमें समुद्रमें विसर्जित कर दिये गये थे, वे ही अब विभिन्न रंगोंकी रेतके रूपमें स्थित हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ कौड़ियाँ, सीपियाँ और कई प्रकारके शंख मिलते हैं। समुद्रके बीचमें विवेकानन्द रॉक है। वहाँ विवेकानन्दजीका मन्दिर बनाया गया है। मोटरबोटपर बैठकर वहाँ जाया जा सकता है। उनके दर्शन करनेके बाद वहाँ एक कमरेमें ध्यान भी कर सकते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जब भारतकी अत्यन्त दुखी अवस्था विवेकानन्दजीने देखी, तो इस चट्टानपर तैर करके गये थे, जो सामान्य व्यक्तिके लिये सम्भव नहीं है; उन्होंने वहाँ तीन दिनतक चिन्तन किया था। इसी स्थानपर गौतममुनिके शापसे इन्द्रको मुक्ति मिली थी। यहाँपर ही आ करके वे शुचि (पवित्र) हुए थे, इसी कारण इसका नाम 'शुचीन्द्रम्' भी है। वैसे इसका मन्दिर कुछ दूरीपर है। इसे नागराज मन्दिर भी कहा जाता है। इस स्थानकी 'नागर कोविल' संज्ञा भी है। यहाँ एक बड़ा तालाब है। साथ ही शिवका मंदिर एवं एक बहुत बड़ी हनुमान्‌जीकी खड़ी मूर्ति है। उसमें ऊपर जब पानी डालें तो नीचे अपने-आप आकरके गिरता है। वहाँके पुजारी अलग होते हैं। यहाँ भी एक वस्त्र ही पहनकर जाना पड़ता है। कन्याकुमारीमें ही सन्त तिरुवल्लुवरकी १३३ फीट ऊँची प्रतिमा है, जो भारतकी सबसे ऊँची प्रतिमाओंमेंसे एक है।

चैत्र-पूर्णिमाको सायंकाल यदि बादल न हों तो इस स्थानसे एक साथ बंगालकी खाड़ीमें चन्द्रोदय तथा अरबसागरमें सूर्यास्तका अद्भुत दृश्य दीख पड़ता है। उसके दूसरे दिन प्रात:काल बंगालकी खाड़ीमें सूर्योदय तथा अरबसागरमें चन्द्रास्तका दृश्य भी बहुत आकर्षक होता है। वैसे भी कन्याकुमारीमें सूर्योदय तथा सूर्यास्तका दृश्य बहुत भव्य होता है। बादल न होनेपर समुद्र-जलसे ऊपर उठते या समुद्र-जलसे पीछे जाते हुए सूर्य-बिम्बका दर्शन बहुत आकर्षक लगता है। इस विहंगम दृश्यको देखनेके लिये प्रतिदिन प्रात:-सायं समुद्र-तटपर भारी भीड़ होती है।

संत-चरित— श्रीरामभक्त पण्डितराज उमापतिजी त्रिपाठी 'वसिष्ठ'

(श्रीअम्बिकेश्वरपतिजी त्रिपाठी)

भारतीय इतिहासके मध्यकालके अन्तिम चरणने परम पवित्र पुण्यसलिला भगवती सरयूके तटपर श्रीअवध क्षेत्रमें एक ऐसे परम भगवद्भक्त, अप्रतिम सन्त, अनुपम विद्वान् और महान् विरक्तका दर्शन किया, जिनके स्मरणमात्रसे वाणी वैदिक हो जाती है, मन शास्त्रमय और शरीर धर्मका सोपान हो जाता है। अभिनव वसिष्ठ पण्डितराज उमापतिजी महापण्डित थे। महामना थे, साक्षात् मर्यादापुरुषोत्तम रामके सद्गुरु थे, उनका जीवन धन्य था; वे ज्ञान, उपासना और कर्मके संगमपर तीर्थराज प्रयागके मूर्तरूप थे। आजीवन शिष्य-मण्डलीके साथ सरयूमें स्नानकर सन्ध्योपासनासे पवित्र होकर श्रीअवधके राजपथसे पवित्र वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए कनकभवनके अधिपति राघवेन्द्र और उनकी प्राणप्रियतमाके प्रति स्वस्ति और मंगल तथा आशीर्वाद दान करना उनके पुण्यमय आत्मसम्मान और गौरवका द्योतक है। उत्तरापथके महत्तम ऐश्वर्य और सर्वोत्तम राजकीय विभूतिने उनके चरणोंकी पवित्र धूलि मस्तकपर चढ़ानेमें अपने आपको गौरवास्पद माना। रीवाँके अधिपति विश्वनाथसिंह, बिठूरके बाजीराव द्वितीय तथा ग्वालियरके सिन्धिया और दूसरे भी राजन्यवर्गने उनकी कृपाका पात्र होनेमें आत्मसम्मान-वृद्धिकी अनुभूति की। बड़े-बड़े विद्वानों और शास्त्रज्ञोंके मस्तक उनके चरण-देशमें नत हो गये। नवद्वीपके विद्वानों, काशीके पण्डितों और मिथिलाके शास्त्रकारोंने उनकी दिग्विजय-मर्यादाकी अक्षुण्णता स्वीकार की। वे पण्डितराज जगन्नाथकी कीर्तिके अध्यात्म-स्तम्भ थे।

पण्डितराज जगन्नाथने 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' की उक्तिसे सन्तोष किया तो पण्डितराज उमापतिने कनकभवन-बिहारी रामको अपने गुरुतत्त्वसे सम्पन्नकर उनकी मर्यादाकी आजीवन रक्षा की।

जन्मकाल—भगवान् रामके परमभक्त, विद्वानोंके मुकुटमणि दिग्विजयी शास्त्री श्रीउमापतिजीका जन्म उत्तर प्रदेशके गोरखपुर (वर्तमान देवरिया) जनपदमें भगवती सरयूके परम पवित्र तटपर पिण्डीग्राममें सम्वत् १८५१ विक्रमीय आश्विन कृष्णपक्ष नवमीको हुआ था।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

वे बाल्यकालसे ही प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। आप आजानुबाहु तथा द्विजिह्व भी थे। उनके चरित्रविकास और विद्याध्ययनपर उनके विद्वान् और संस्कृतज्ञ पिता पण्डित शंकरपतिजी त्रिपाठीका विशेष प्रभाव पड़ा था। जीविकोपार्जनकी दृष्टिसे उनका परिवार बिहार प्रदेशके छपरा (वर्तमानमें सीवान) जनपदके महुजा ग्राममें आ गया।

एक दिन बालसुलभ चपलताके कारण आप 'भाष्यकी पुस्तक' को उलट-पुलट रहे थे, तो किसीने कहा कि मालूम होता है भाष्य भी पढ़ लेंगे। इतना सुनते ही तेजस्वी, प्रभविष्णु बालकके मुखसे सहसा निकल पड़ा कि ***'जब तक भाष्य मथि नहिं डरिहौं। तबतक उमापति पिण्डी पग न धरिहौं।'***

अध्ययनकाल—काशीमें श्रीकृष्णराम शेषसे व्याकरण, धन्वन्तरिभट्टसे मीमांसा और भैरवदत्तसे न्यायशास्त्र पढ़कर अपनी अलौकिक बुद्धि-प्रखरताका परिचय देकर उमापतिजीने कुमारावस्थामें ही तत्कालीन पण्डित-समाजको आश्चर्यचकित कर दिया। उनके पाण्डित्यसे बिहार और उत्तर प्रदेशने अपने-आपको धन्य माना।

वे केवल उच्चकोटिके विद्वान् ही नहीं, प्रसिद्ध महाकवि भी थे। उनके सरयू-अष्टक स्तोत्रकाव्यमें विचित्र भावुकता, माधुर्य और सहृदयताका दर्शन होता है, व्याकरणशास्त्रके अर्वाचीन मतका खण्डन करके प्राचीन मतके समर्थनके लिये उन्होंने दो बड़े ही मनोरम

ग्रन्थोंकी रचना की थी। उन्होंने संस्कृतमें भगवान् श्रीराम और श्रीसीताजीके स्तवनमें अनेक श्लोकोंकी रचना की, जो बहुत सरस और पाण्डित्यपूर्ण हैं।

काशीमें विद्याध्ययन समाप्त होनेके बाद उन्होंने गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। कुछ दिनोंतक वैवाहिक जीवन बितानेके बाद पच्चीस वर्षकी ही अवस्थामें वे देशभ्रमण और दिग्विजयके लिये निकल पड़े।

पाण्डित्य और राजकीय ऐश्वर्य उनके चरणोंपर नतमस्तक हो गये, पर उन्होंने सर्वथा संन्यासवृत्तिका परिचय दिया। वे उनके प्रति सदा अनासक्त ही रहे। उमापतिजी महाराज त्यागकी मूर्ति थे, वेद और शास्त्रोंके चिन्मय विग्रह थे। अपने दिग्विजय-कालमें समस्त उत्तरापथमें उन्होंने पाण्डित्यका विजय-स्तम्भ स्थापित कर दिया। उनकी दिव्य विद्याशक्तिका लोहा मान लेनेमें ही तत्कालीन पण्डितमण्डलीने अपनी सम्मान-रक्षा समझी। वे एक-एक विषयपर विद्वत्तापूर्ण ढंगसे शास्त्रार्थ कई दिनोंतक करते रह जाते थे।

विन्ध्यवासिनीका साक्षात् दर्शन—उन्होंने कुछ दिन विन्ध्याचलमें भी बिताये। महामायाने अत्यन्त कृपापूर्वक उनको अपने प्रत्यक्ष दर्शनसे सम्मानित किया था। देवीकी प्रेरणासे उन्होंने अयोध्यामें आश्रमकी स्थापनाकर स्थायीरूपसे निवास किया। अयोध्यानरेश कविवर मानसिंहने अयोध्या-आगमनपर उनके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा दिखायी। राजकीय ठाट-बाटसे स्वागत-सत्कार किया, रामके पवित्र धामने उनका जयनाद किया। पण्डित उमापतिने तीन लोकके अधिपति, सीताके प्राणेश्वरको शिष्यरूपमें स्वीकार किया।

वास्तविक तथा शास्त्रगत गुरुतत्त्वके बोधसे साकेतकी श्रीवृद्धि की। श्रीअवध-प्रवेशके समय उन अभिनव वसिष्ठने सरयूका दर्शन किया, पतितपावनी साकेत-विहारिणीके तटपर महाकविने कनकभवनमें विहार करनेवाले राम और श्रीजानकीकी कुशलक्षेम-प्रार्थना की।

कविने सरयूतटकी पवित्र रज-कणिकाका मस्तकमें स्पर्शकर कहा—

'हे माते! आपके कर्दमके स्पर्शसे ईश्वरमें आस्था न रखनेवाले नास्तिक पापी मनुष्योंकी बुद्धि भी मल-रहित होकर पवित्र हो जाती है और वे पापविमुक्त होकर पुण्य तेजसे सम्पन्न इन्द्रको भी भयापन्नकर स्वर्गमें आनन्द प्राप्त करते हैं। आप सात्त्विक, राजस और तामस तीनों गुणवाले मनुष्योंपर समान दृष्टि रखनेवाली हो। हे माते! आपके इधर-उधर पड़े हुए रजकण भी इतने शक्तिशाली हैं कि वे यदि मशक आदि क्षुद्र जीवोंकी मृत देहमें भी छू जाते हैं तो ब्रह्मपदकी उन्हें प्राप्ति हो जाती है।' सरयू-स्तवनके सौभाग्यसे ही अपने काव्य-गौरवको समलंकृतकर पण्डितराजने भक्तिकी विजयिनी पताका फहराकर श्रीअवधमें प्रवेश किया।

वे रामके स्नेही भक्त थे, अपने-आपको वसिष्ठ मानकर अपनी पुण्यमयी कृपादृष्टिसे राघवेन्द्रको अभिमन्त्रित करना ही उनका नित्य जीवनकृत्य था, वे उनसे स्नेह करते थे।··· उनके अवध-निवाससे प्रत्येक मन्दिरमें भक्तिमय उत्सवों, नृत्यों, संगीतोंकी बाढ़ आ गयी। उन्होंने १८८४ विक्रमीयमें पूर्णरूपसे संन्यास धारणकर 'नयाघाट' पर आश्रम बनाकर भक्ति-साधना आरम्भ की।

उनकी संयम और नियमकी मर्यादा, दानशीलता और उदारता तथा कठोर तपस्या और अलौकिक तथा दिव्य प्रतिभाके आलोकसे समस्त अवध धन्य हो उठा।

अलौकिक चमत्कार—वे भगवान् रामको अपना शिष्य मानकर उनकी उपासना करते थे। स्वयंको वे भगवान् रामका गुरु मानते थे। इस भावके अबतक यही एक सन्त हुए हैं। अपने गलेकी पहनी हुई माला उनको पहनाते थे। एक दिन बड़ी विचित्र घटना हुई। कनक-भवनके महंत श्रीलाड़िलीशरणजी बहुत बड़े रसिक भक्त थे, उनकी इच्छा एक बार श्रीभगवान्की अन्तरंगा नित्य-लीला देखनेकी हुई।

स्वप्नमें राघवेन्द्रने उन्हें श्रीउमापतिजीके चरणोंमें बैठकर बोध प्राप्त करनेकी आज्ञा दी। वे नित्यप्रति उमापतिजीके सत्संगमें आने लगे। धीरे-धीरे घनिष्ठता बढ़ गयी। एक दिन सत्संगमें उन्होंने किसी प्रसंगपर रीझकर राघवेन्द्रके लिये गूँथी गयी दो फूलमालाओंमें एक उमापतिजीके गलेमें डाल दी, हाररचनाकी प्रशंसाकर श्रीउमापतिजीने दूसरी माला भी पहन ली और दोनोंको उतारकर स्नेहपूर्वक लाड़िलीशरणजीसे निवेदन किया कि एक श्रीजनकनन्दिनी और दूसरी दशरथनन्दनको प्रसादरूपमें मेरी ओर से दे दीजियेगा। भावुक पुजारीने आदेशका पालन किया। राम और मैथिलीको हार पहनानेपर समस्त अवधमें उमापतिजीके प्रति विक्षोभकी आग भड़क उठी, पर वे यथाशान्त थे। राघवेन्द्रने गुरुकी महिमाकी श्रीवृद्धिके लिये लाड़िलीशरणजीको स्वप्नमें बतलाया कि हम दम्पतीने प्रसन्नतापूर्वक गुरुप्रदत्त प्रसाद पाकर अपने भाग्यकी सराहना की है। वे हमारे कुलगुरु हैं। साक्षात् श्रीवसिष्ठजीके अवतार हैं। भावुक भक्तों और सन्तोंने पुजारीके स्वप्नमें विश्वास प्रकट किया, पर मर्यादामार्गके कुछ पण्डित और साधुओंने विद्रोह किया कि यह तो नितान्त असम्भव है। समस्त सन्तमण्डली और पण्डितवर्गने उमापतिजीसे शंका-समाधान माँगा। इस सिद्ध महात्माने अत्यन्त प्रेमसे विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि आप लोग भगवद्-विग्रह मेरे दरवाजेपर लायें, यदि भगवान् मेरे हाथसे माला ग्रहण कर लें तो मेरी निष्ठा उचित समझियेगा। श्रीकनकभवन-विहारीकी शोभायात्रा-धूमधामके साथ निकाली गयी। राघवेन्द्रका रथ उनके दरवाजेपर पहुँच गया, मर्यादापुरुषोत्तम राजराजेश्वरका दिव्य शरीर हर्षोन्मादसे पुलकित हो उठा। उनके कानोंके कुण्डल हिलने लगे, नवश्यामघनकान्तिसम्पन्न रामने श्रद्धापूर्वक अभिवादन किया, भक्त माला लिये खड़ा रहे और भगवान् ख्याल न करें? सबसे बड़ी बात तो यह थी कि भक्तने भगवान्को शिष्य भी तो माना था, गुरुका अपमान भगवान्से हो? दशरथनन्दनका मस्तक नत हो गया, रामकी चिन्मय प्रतिमाने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। माला लेकर गलेमें डाल ली। अयोध्यानगरी परमभागवत उमापति—ऐसे भक्तराजकी उपस्थितिसे कृतार्थ हो उठी। सन्तोंने पण्डितराजका स्तवन किया। भगवती मिथिलेशनन्दिनीके चरणकमलोंमें उनकी अपार निष्ठा थी। एक बार कुछ सन्त आये, उन्होंने कार्तिकमासमें कटहल माँगा। पण्डितराजने सम्पत्तिस्वरूपा जानकीका स्मरण किया, भण्डार कटहलसे परिपूर्ण हो उठा।… एक बार घरमें चूड़ी पहनानेवाली आयी। घरमें दो ही स्त्रियाँ थीं। उसने कहा मैंने तीनको चूड़ियाँ पहनायी हैं। तीसरी स्त्री श्रीजानकीजी थीं। कितनी भक्तिपूर्ण भावना थी उनकी!

सामाजिक जीवन—आपके आश्रममें भोजन-वस्त्रसहित सहस्रों छात्र शिक्षा पाते थे। आप त्याग और तपश्चर्याके कारण सर्वसाधारणमें भी प्रख्यात थे। समाजकी निर्मलधारा विषय-वासनासे मलिन न होने पाये—इसके लिये शिक्षा और दीक्षारूपी निर्मलीका प्रयोग करना उनका नित्यका कर्म बन गया था। वे एक दिवससे अधिक समयके लिये धन या सामग्री रखना पसन्द नहीं करते थे। सत्य तो यह है कि दानशीलता इतनी मात्रामें थी कि एकत्रीकरणका प्रश्न ही नहीं आने पाता था। अयोध्याके महाराज मानसिंहने आपसे प्रार्थना इस सम्बन्धमें की, उत्तरमें आपने कहा—

दौलति में लति दो बसे मद औ कलह विशेष।
ताते धन सज्जन त्यजतु हैं सुनु अवध नरेश॥

सम्मानित पण्डितवर्ग और प्रान्तीय राजवर्ग आपके शिष्य थे। दीक्षामन्त्र ग्रहण करनेवालोंकी भीड़ किसी सम्मेलनका होना बताती थी। एक बार श्रीकनकभवन-विहारीजीके मन्दिरके सामने मैदानमें गुप्तार घाटपर रहनेवाले एक सीधे-सादे ब्राह्मण गंगाधर मिश्रने जगन्नाथपुरीके मार्गव्यय, उस समयके साठ रुपयेके लिये अनशन किया, बिना अन्न-जलके तीन दिन बीत गये। राघवेन्द्रने गंगाधर मिश्रको स्वप्नमें आदेश दिया कि कल तुम्हें मेरे गुरुसे साठ रुपया मिल

जायगा। मैंने मार्गव्ययकी व्यवस्था कर दी है। उसी समय राघवेन्द्रके श्रीविग्रहने स्वप्नमें पण्डितराजका चरणाभिवादनकर कहा कि 'गंगाधरको कल प्रातः साठ रुपया कृपापूर्वक दे दीजियेगा।' पण्डितराज दूसरे दिन साठ रुपया रखकर ब्राह्मणदेवताकी प्रतीक्षा करने लगे। गंगाधरने लोगोंसे पूछा—'श्रीरामके गुरु किस स्थान पर रहते हैं?' उन्होंने स्वप्नकी बात प्रकट कर दी, लोगोंने पण्डितराजके भाग्यकी सराहना की। गंगाधर अपनी इच्छापूर्तिकर जगन्नाथपुरी चले गये। पण्डितराजकी अन्तःकरणकी वृत्ति इतनी पवित्र हो चुकी थी कि यदि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके भोजन-सामग्रीमें रस-वैषम्य होता तो आपको कष्ट होता। सुना जाता है कि तिक्त पदार्थ सागमें अधिक होनेके कारण आपकी जिह्वामें छाले पड़ गये। पूछनेपर पुजारीने बताया कि भोजनमें मिर्च अधिक मात्रामें हो गयी थी।

संयोगवश एक दिन पुजारी रात्रिमें शयनके समय जल रखना भूल गये। स्वप्नमें जानकारी होनेपर दूसरे दिन पुजारीसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि जल नहीं रखा गया था। भक्तराज उमापति अत्यन्त संयमी, उदार और त्यागकी तो साक्षात् मूर्ति ही थे, मूर्तिमान् वैराग्य और संन्यासके साकार विग्रह थे। शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधानकी अक्षय निधि थे, उनका हृदय निष्कपटता और पवित्रताका मंगलभवन था। उनके सामने आनेपर याचकोंकी याचकताका अन्त हो जाता था। वे नित्य सायंकाल अयोध्यामें घोषणा करवा देते थे कि जो लोग भूखे रह गये हों, उनके लिये भोजनकी पर्याप्त व्यवस्था है, सबको खिलाकर ही वे रातमें सूक्ष्म फलाहार ग्रहण करते थे। नित्य हजारोंका दान करते थे, सिद्धियाँ उनके चरणदेशकी परिक्रमाकर अपनी श्रीवृद्धि करती थीं, उनके चरणपथमें राघवेन्द्रकी राज्यश्रीका विहार जो था। नित्य प्रचुर धन दानमें लगाकर लोककल्याणकी साधना करना ही उनके धार्मिक जीवनका प्रमुख अंग बन गया था। वे उच्चकोटिके गुणग्राही भी थे। एकबार भुवनेश कविने उनका स्तवन किया।

दोऊ को प्रबल यश गावत सकल जग
दोऊ हैं सुशील, दोऊ गुणगण खानी हैं।
दोऊन के नाम-धाम पूरन करत आस
दोऊ दोष-दारिद-हरन वरदानी हैं॥
भनै 'भुवनेश' यश विलसत देस-देस
सेवत नरेश दोऊ जौन जन ज्ञानी हैं।
उमापतिजी सों उमापति सों फरक एतो
उत बाम हैं भवानी इत दाहिने भवानी हैं॥

इस काव्यने उन्हें विमुग्ध कर लिया, प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने भुवनेशको धन और यशसे सम्मानितकर उनका उत्साह बढ़ाया। भगवान् श्रीरामका अप्रतिम सौन्दर्य नयनोंमें आरक्षितकर, श्वास-श्वासमें उनमें श्रीविग्रहकी दिव्य गन्ध भरकर, त्वचामें उनकी स्पर्शानुभूति समेटकर उन्होंने पुण्यसलिला, कलिमलहारिणी, तपोमयी सरयूके पवित्र तटपर श्रीअवधमें ही सम्वत् १९३० विक्रमीयकी भाद्रपद शुक्ल द्वितीयाको दिव्य साकेतधामकी यात्रा की। **[ऋषि-जीवन]**

श्रीराम-नामकी महिमा

राम राम तव नाम जपन्तः पामरा अपि तरन्ति भवाब्धिम्।
अङ्गसङ्गिभवदङ्गुलिमुद्रः किं विचित्रमतरत् कपिरब्धिम्॥

(श्रीरामकर्णामृत ४।७३)

हे राम! श्रीराम!! आपके नामका जप करनेवाले पामर जीव भी भवसागरको अनायास पार कर जाते हैं, फिर आपके नामसे अंकित आपकी अँगूठीको अपने मुखमें लिये हुए श्रीहनुमान्‌जी लौकिक समुद्रके पार चले गये—इसमें आश्चर्य ही क्या है।

प्रसन्नताका रहस्य

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

प्रेम और विचार अन्त:करणकी शुद्धिका हेतु है; क्योंकि विचारसे देहाभिमानका त्याग और प्रेमसे अपने-आपका समर्पण होनेसे अपने-आप निर्वासना आ जाती है। सब प्रकारकी चाहका अभाव हो जाना ही अन्त:करणकी परम शुद्धि है। जबतक मनुष्यके राग-द्वेष समूल नष्ट नहीं हो जाते, तबतक वह चाहसे रहित नहीं हो पाता और जबतक वह अपनी प्रसन्नताका कारण अपनेसे भिन्न किसी व्यक्ति, वस्तु, अवस्था या परिस्थितिको मानता है, तबतक राग-द्वेषका अन्त नहीं होता। इसलिये साधकको चाहिये कि वह अपने विकासका अर्थात् उन्नति या प्रसन्नताका हेतु किसी दूसरेको न माने।

विचार करनेपर मालूम होता है कि किसी व्यक्ति, सम्पत्ति या परिस्थितिपर मनुष्यकी उन्नति या प्रसन्नता निर्भर नहीं है; क्योंकि अज्ञानवश अपनी प्रसन्नताका हेतु समझकर वह जिसका जितना संग्रह करता है, उतना ही पराधीनताके जालमें फँस जाता है एवं पराधीनता किसीकी प्रसन्नतामें हेतु नहीं है, यह प्राणिमात्रका अनुभव है। स्वाधीनता, सामर्थ्य और प्रेम—यह मनुष्यकी स्वाभाविक माँग है, जो किसी प्रकार संगठनसे या संग्रहसे पूरी नहीं हो सकती और स्वाभाविक माँगकी पूर्तिके बिना किसीको वास्तविक प्रसन्नता नहीं मिलती।

प्रत्यक्ष देखा जाता है कि स्वावलम्बी मनुष्य जितना सुखी और प्रसन्न रहता है, पराधीन व्यक्ति कभी वैसा प्रसन्न नहीं रह सकता। मनुष्य अज्ञानसे ऐसा मान लेता है कि मुझे बड़ा भारी अधिकार मिलने या बहुत-सी सम्पत्ति मिलनेसे मैं सुखी हो जाऊँगा, परंतु जैसे-जैसे वैभव बढ़ता है, वैसे-ही-वैसे उसके जीवनमें पराधीनता, भय, रोग, भोगासक्ति और कठोरता आदि बढ़ते जाते हैं, जो प्रत्यक्ष ही दु:खके कारण हैं।

इसलिये साधकको चाहिये कि उसने संसारसे जो कुछ लिया है, वह वापस लौटाकर अर्थात् प्राप्त हुई सम्पत्ति और शक्तिके द्वारा उसकी सेवा करके उससे उऋण हो जाय तथा उससे कुछ ले नहीं एवं अपने-आपको भगवान्‌के समर्पण करके अर्थात् उनका होकर भगवान्‌से उऋण हो जाय। इस प्रकार जब उसपर किसीका ऋण नहीं रहता, तब अन्त:करण अपने-आप परम पवित्र हो जाता है।

भगवान्‌से भी यही प्रार्थना करे कि 'भगवन्! मुझे आप अपने किसी भी काममें आनेयोग्य बना लीजिये। मैं आपकी प्रसन्नताके लिये आपका खिलौना बन जाऊँ या जिस-किसी भी स्थितिमें रहकर आपका कृपापात्र बना रहूँ। इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये।'

यदि कोई कहे कि भगवान् तो पूर्णकाम हैं। अपनी महिमामें ही सदा प्रसन्न हैं। उनको अपनी प्रसन्नताके लिये जीवकी क्या आवश्यकता है? तो कहना चाहिये कि भगवान्‌की पूर्णता एकदेशी नहीं होती। वे तो सभी प्रकारसे पूर्ण हैं, अत: जिसकी जैसी माँग होती है, उसे वे उसी प्रकार पूर्ण करते हैं। वे पूर्णकाम हैं, तो भी अपने आश्रित प्रेमीकी माँग पूर्ण करनेमें उनको आनन्द मिलता है।

जो सर्वसमर्थ नहीं होता, उस मनुष्यके पास जाकर कोई कहे कि 'आप मुझे किसी कामपर रख लीजिये, छोटे-से-छोटा कोई भी काम करनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है' तो आवश्यकता न होनेपर वह यही कहेगा कि 'मेरे पास अभी कोई काम नहीं है। मैं तुमको नहीं रख सकता' क्योंकि वह इतना समर्थ नहीं है कि सभीको रख सके; परन्तु भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं। उनके पास तो किसी बातकी कोई कमी नहीं है। फिर जो एकमात्र उनका प्रेम ही चाहता है, जिसको अन्य किसी प्रकारके सुखकी चाह नहीं है, उसको सर्वसमर्थ प्रभु कैसे निराश कर सकते हैं। वे तो स्वयं उसके प्रेमी बनकर उसे अपना प्रेमास्पद बना लेते हैं। यही उनकी असाधारण महिमा है।

जबतक मनुष्य संसारसे कुछ लेनेकी आशा रखता है, तबतक वह कभी सुखी नहीं हो सकता; क्योंकि संसार अनित्य और क्षणभंगुर है। उससे जो कुछ मिलता है, उसका वियोग अवश्यम्भावी है। इस रहस्यको समझकर जो साधक किसीसे कुछ नहीं चाहता, सबकी सब प्रकारसे सेवा करता है और उसके बदलेमें कुछ भी नहीं लेता, वह सदैव प्रसन्न रहता है।

गो-चिन्तन—

कलियुगमें साक्षात् कामधेनु

गोमाताकी महिमा एवं महत्त्वकी युगोंसे चर्चा होती आ रही है। युगों-युगोंसे हमारे ऋषियोंके आश्रम, गुरुकुल तथा राजाओं-महाराजाओंके प्रासादोंसे लेकर सामान्य सद्गृहस्थोंके भवनतक गोमाताके बिना सूने माने जाते रहे हैं। गोमाताने भी समय-समयपर उस समादरका प्रतिदान चुकाया है। वसिष्ठ ऋषिके आश्रममें विश्वामित्र जब अपने शताधिक सेवकों तथा सैनिकोंसहित पहुँचे, तब गोमाताके प्रभावसे सेवा-सत्कारकी दिव्य व्यवस्था देख चकित हो गये। उन्होंने लोभवश जब ऋषिसे उसी गायको देनेका आग्रह किया, तो वे तैयार न हुए। शक्तिके मदमें चूर राजाने जब गायको हाँक ले जानेका प्रयास किया, तो गायने ही विकराल रूप धारणकर उन्हें मार भगाया। गोमातासे सम्बन्धित इसी प्रकारकी अनेकानेक शिक्षाप्रद, प्रेरणाप्रद एवं चमत्कारी घटनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें गोमाताके विवेक, शक्ति एवं प्रभावकी अद्‌भुत झलक मिलती है। देखा जाय तो गोमाताका महत्त्व गंगाकी भाँति परिलक्षित होता है, जो भुक्ति और मुक्ति दोनोंको देनेमें सक्षम हैं। कामधेनु गाय कामदुघा अर्थात् इच्छा-मात्रसे समस्त अभिलाषाओंकी पूर्ति करनेवाली होती है और निरन्तर बिना प्रसवादिके ही दुग्ध प्रदान किया करती है।

सृष्टिगत परम्पराके विपरीत जब कोई घटना होती है, तो उसे देख-सुनकर हम चकित हो जाते हैं। आज भी गायोंके साथ यत्र-तत्र ऐसे प्रसंग प्रकट हो जाते हैं। उदाहरणके लिये राजधानी दिल्लीमें स्वामी करपात्रीजीद्वारा स्थापित श्रीधर्मसंघ संस्थाके प्रांगणमें कुछ वर्ष पूर्वतक एक गाय बिना बच्चा पैदा किये ही नियमित दूध दिया करती थी। यह घटना लगभग पचीस-तीस वर्ष पहलेकी है। इसके दर्शनके लिये दूर-दूरसे लोग आते थे। बहुधा इसे स्वामी करपात्रीजीके तपका प्रताप कहा जाता था। कहते हैं कि उसका दूध पर्याप्त मधुर, पौष्टिक और मात्रामें प्रचुर होता था। उसे यद्यपि खानेके लिये सामान्य आहार दिया जाता था, किंतु उसके रख-रखावकी बड़ी पवित्र व्यवस्था थी।

प्रथम बार यह सुनकर मुझे आश्चर्य तो हुआ, परंतु साथ ही यह विश्वास दृढ़ हो उठा कि हमारी पौराणिक कथाएँ कोरी कल्पनाएँ नहीं हैं। ऐसे ही दुग्धामृत प्रदान करनेवाली एक कलियुगकी कामधेनुकी घटना इस प्रकार है—यह घटना मेरे सहोदर अनुजसे सम्बन्धित है। वे गंगापुर सीटी राजस्थानमें रहते हैं। उनके पास सामान्य कदवाली और अत्यन्त ही सीधी एक गाय है। सीधी तो इतनी है कि छोटे-छोटे बच्चे उसके कान, सींग, गर्दन, पीठको सहलाते और उसके साथ खेलते हैं। इसके साथ ही उसके और भी गुण हैं, जिससे वह पौराणिक कथाओंवाली गायोंकी ही भाँति विलक्षण प्रतीत होती है। वह विगत सात वर्षोंसे लगातार बिना दुबारा ब्याये ही नियमित रूपसे दोनों समय दूध देती आ रही है।

सामान्य रूपसे दुधारू गायें अधिक-से-अधिक सालभरतक दूध देती हैं और उसके लिये नाना प्रकारके प्रबन्ध करने होते हैं। जैसे दुहते समय बछड़ेको सामने रखना, कुछ चारा आदि सामने रखना, किंतु इस गायके लिये कुछ भी नहीं किया जाता। यदि वह बँधी नहीं रहती तो आवाज देकर बुलानेपर एक बुद्धिमान् मानवकी भाँति समीप आकर खड़ी हो जाती है। दूध दुहते समय ताजा ब्यायी गायकी तरह थनमें हाथ लगाते ही दूध उतर आता है और डेढ़-दो लीटर दूध दूहनेके बाद उसे छोड़ दिया जाता है। पुनः वह अपने इच्छित स्थानपर चली जाती है। यह क्रम दोनों ही समयका है।

आरम्भमें साल पूरा होनेपर जब वह नियमित दूध दे रही थी, तो लोगोंको आश्चर्य हुआ था और तबसे आजतक दूर-दूरसे लोग उसे देखनेके लिये आते हैं। परिवारके साथ-ही-साथ समीपवर्ती लोगोंमें भी इस गायके प्रति निरन्तर आस्था बढ़ती जा रही है। लोग इसे नन्दिनी, कामधेनु आदि विविध नामोंसे सम्बोधितकर सम्मान देते हैं। पशु-चिकित्सक तथा जानकार लोग उसे देखकर चकित हो जाते हैं।

—**श्रीबलिराजसिंहजी**

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान्‌की कृपाशक्ति

प्रिय महोदय! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। आपके प्रश्नोंके उत्तर क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) भगवान् सब कुछ कर सकते हैं। यदि ऐसा न हो तो उनकी भगवत्ता ही कैसी? प्रभुकी कृपासे जो काम होता है, उसमें भी कारण तो भगवान् ही हैं। अतः उनकी कृपासे होना और उनके द्वारा किया जाना दो बात नहीं है। पर भगवान् ऐसा कब और क्यों करते हैं—यह दूसरा कोई नहीं बता सकता। अपनी-अपनी मान्यताके अनुसार सब कहते हैं, पर असली कारण और रहस्य भगवान् स्वयं ही जानते हैं।

(२) प्रारब्धका भोग अमिट अवश्य है, पर वहींतक अमिट है, जहाँतक मनुष्यकी सामर्थ्यका विषय है। प्रभु सर्वशक्तिमान् हैं, उनके लिये कोई काम असम्भव नहीं कहा जा सकता। वे असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं। भगवान्‌ने जो यह कहा है कि—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आए सरन तजौं नहिं ताहू॥

—यह उनके अनुरूप ही है; क्योंकि आप शरणागतवत्सल ठहरे। अतः तुलसीदासजीका लिखना सर्वथा ठीक है।

(३) प्रह्लादकी रक्षामें उसका प्रारब्ध कारण नहीं है, उसमें एकमात्र भगवान्‌की उस महती कृपाका ही महत्त्व है, जो कि अडिग निष्ठा और विश्वासके कारण कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार अपना प्रभाव प्रत्यक्ष प्रकट करती है।

(४) भगवान्‌का भक्त भगवान्‌से किसी भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थितिके लिये याचना करे तो भी भगवान् नाराज नहीं होते। यदि उचित समझते हैं तो उसकी कामनाको पूरी भी कर देते हैं। पर जो भगवान्‌के प्रेमी भक्त हैं, जिनका एकमात्र प्रभुमें ही प्रेम है, उनके मनमें कामनाका संकल्प ही नहीं उठता। उनके विचारमें जगत्‌की कोई भी वस्तु या परिस्थिति आवश्यक ही नहीं रहती। वे तो जो कुछ करते हैं, भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही करते हैं और जो कुछ होता है, उसे भगवान्‌की अहैतुकी कृपा मानते हैं; इसलिये उनके लिये कामना या याचनाका कोई प्रश्न ही नहीं रहता।

दण्डकवनके ऋषि-मुनि और अन्य संत, जो दानवी और भौतिक शक्तिसे मारे गये, उनकी रक्षा करनेमें भगवान्‌की कृपाशक्ति असमर्थ थी, ऐसी बात नहीं है; उनके शरीरोंका नाश उस प्रकार कराना ही भगवान्‌को अभीष्ट था, इसलिये रक्षा नहीं की। जिनकी रक्षा करना आवश्यक था, उनकी रक्षा कर ली। भगवान्‌की कृपा कौन-सा काम क्यों करती है और क्यों नहीं करती, इसका अनुमान मनुष्य कैसे करे?

(५) भौतिक या आसुरी शक्तियोंको परास्त करनेका सर्वोत्तम उपाय निष्काम सेवायुक्त जीवन है। जिसको इस भौतिक जगत्‌से कुछ लेना नहीं है, केवल भगवान्‌के नाते उनके आज्ञानुसार उन्हींकी कृपासे मिली हुई शक्तिसे जगत्‌की सेवा-ही-सेवा करना है, वह समस्त भौतिक और आसुरी शक्तियोंको अनायास परास्त कर सकता है। बालक प्रह्लाद भी भगवान्‌का निष्कामी और परम विश्वासी एकनिष्ठ भक्त था। ऐसे भक्तसे भगवान् स्वयं मिलते हैं, छिप नहीं सकते। शेष प्रभुकृपा।

(२)

कर्तव्यपालन भी साधन है

प्रिय महोदय! प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपने अपने मनकी गतिका अध्ययन किया—यह तो अच्छी बात है, पर अध्ययनका परिणाम ऐसा निकलना चाहिये, जिससे अपनी जानकारीके अनुसार जीवन बने और मान्यताके अनुसार आचरण हो।

धार्मिक पुस्तकोंका पढ़ना कोई बुरी बात नहीं है, पर वह व्यसनके रूपमें न होकर उनके द्वारा समझी हुई बातोंको काममें लानेके लिये ही हो, यही उत्तम है। कालेजकी पढ़ाई, यदि उसे पिताका आदेश मानकर भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये कर्तव्यपालनके रूपमें की

जाय, तो वह भी साधन ही है; क्योंकि आप अपनेको विद्यार्थी मानते हैं तो मान्यताके अनुकूल आचार-व्यवहार भी होना ही चाहिये।

गीताजीका यह श्लोक—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ ....॥

—बहुत ही उत्तम है। आप यदि एकमात्र प्रभुका ही चिन्तन करना चाहते हैं तो बड़ी अच्छी बात है; ऐसा तो करना ही चाहिये। जिसके मनमें यह चाह वास्तवमें जाग्रत् हो जाती है, उसके मनमेंसे अन्य सब प्रकारकी इच्छाओंका अन्त हो जाता है, फिर उसका मन चंचल कैसे रह सकता है। अतः आपको चाहिये कि आप इस चाहको प्रबल और दृढ़ बनायें। इसका उपाय एकमात्र भगवद्विश्वास और भगवान्‌के नित्य सम्बन्धका अनुभव है। प्रेम होनेपर निरन्तर स्मरण हो सकता है।

आपका लक्ष्य यदि भगवत्प्राप्ति है तो बहुत ही उत्तम है। लक्ष्यपूर्तिसे कभी निराश नहीं होना चाहिये। प्राप्त सामर्थ्यका विवेकके प्रकाशमें लक्ष्यपूर्तिके लिये उपयोग करते रहना चाहिये। भोगवासनासे रहित होनेपर ही लक्ष्यकी पूर्ति शीघ्र हो सकती है।

आपने लिखा कि प्रभुकी अनन्त कृपाका आभास मुझे अनेक रूपसे हो रहा है, जहाँ देखता हूँ, वहाँ प्रभुकी कृपाके ही दर्शन अधिकांश होते हैं—सो ऐसा होना बहुत ही उत्तम है, पर जिस साधकको प्रभुकी कृपाका इस प्रकार दर्शन होने लगता है, वह उनके प्रेममें डूब जाया करता है। उसका हृदय कृतज्ञतासे भर जाता है, अतः उसमें प्रेमकी गंगा लहराने लगती है। वह भला प्रभुको कैसे भूल सकता है? शेष प्रभुकृपा।

(३)

वृत्तिके साथ जगत्‌की सेवाका भाव रखें

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण! आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए। आपके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है—

आप चिकित्साकार्य वृत्तिके लिये करते हैं तो इसमें कोई दोषकी बात नहीं है। आप वृत्तिके लिये करते हुए भी अपने कामसे जगत्-जनार्दनकी सेवा कर सकते हैं। जीविकाके लिये दूसरा काम खोजनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरी समझमें तो आप जो कुछ करते हैं और कर सकते हैं, जो काम करनेकी आपमें योग्यता है, वह सभी सेवा बन जाय—यही ठीक होगा। जीवन-निर्वाह तथा बाल-बच्चोंका भरण-पोषण भी तो प्रकारान्तरसे सेवा ही है। अपने शरीर और बाल-बच्चोंको यदि आप अपने न मानकर उस प्रभुके ही समझें और सबकी सेवाके साथ उनकी सेवाको मिला दें तो क्या सब-का-सब काम सेवा नहीं बन जायगा?

मेरी समझमें आपको साझेदारीके झंझटमें नहीं पड़ना चाहिये। दूसरेकी मेहनतसे होनेवाली कमाई चाहे वह कितनी ही अच्छी हो, आपके लिये हितकर नहीं होगी; क्योंकि आपको उसके अधीन बना देगी। शेष प्रभुकृपा।

(४)

वास्तविक संगत्याग

बुरे लोगोंके साथ रहना भी कुसंगतिका एक अंग है; परंतु परिस्थिति-परिवर्तन करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है। अतः वह अपनी ओरसे किसी सुखके लालचसे या दुःखके भयसे बुरे लोगोंका संग न करे तथा उनसे द्वेष और घृणा भी न करे, उनका भी हित ही करे। पर उनसे उदासीन रहे। यही साधक कर सकता है। संयोगवश यदि प्रभुविमुख मनुष्योंके साथ रहना पड़े तो साधकको उसे भगवान्‌का कृपामय विधान मानकर समझना चाहिये कि भगवान् मुझसे इन दुखियोंकी सेवा कराना चाहते हैं। इसीलिये इनके साथ मेरा सम्बन्ध जोड़ा है—यह समझकर बल, बुद्धि, योग्यता आदिके द्वारा उनकी धर्मानुकूल सेवा करता रहे, उनसे न तो द्वेष करे न घृणा, न अपनेमें ऐसे अभिमानको स्थान दे कि मैं तो अच्छा हूँ, भगवान्‌का भक्त हूँ और ये लोग नीच हैं तथा न उनसे किसी प्रकारके सुखकी आशा करे। ऐसा करनेसे उनसे ममता और उनमें आसक्ति नहीं होगी। ममता और आसक्तिका न रहना ही वास्तविक संगत्याग है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३।५९ बजेतक	मंगल	रोहिणी दिनमें ८।३५ बजेतक	१ दिसम्बर	**मिथुनराशि** रात्रिमें ९।२६ बजेसे।
द्वितीया सायं ५।५ बजेतक	बुध	मृगशिरा ,, १०।१९ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५।२४ बजेसे, **ज्येष्ठाका सूर्य** रात्रिशेष ५।० बजे।
तृतीया ,, ५।४३ बजेतक	गुरु	आर्द्रा ,, ११।३६ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** सायं ५।४३ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिशेष ६।११ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ७।३६ बजे।
चतुर्थी रात्रिमें ५।४८ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ,, १२।२३ बजेतक	४ ,,	× × × ×
पंचमी सायं ५।२४ बजेतक	शनि	पुष्य ,, १२।४० बजेतक	५ ,,	**मूल** दिनमें १२।४० बजेसे।
षष्ठी ,, ४।३१ बजेतक	रवि	आश्लेषा ,, १२।२७ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** सायं ४।३१ बजेसे रात्रिमें ३।५१ बजेतक, **सिंहराशि** दिनमें १२।२७ बजेसे।
सप्तमी दिनमें ३।१२ बजेतक	सोम	मघा दिनमें ११।४९ बजेतक	७ ,,	**श्रीभैरवाष्टमीव्रत, मूल** दिनमें ११।४९ बजेतक।
अष्टमी ,, १।३४ बजेतक	मंगल	पू०फा० ,, १०।५४ बजेतक	८ ,,	**कन्याराशि** सायं ४।३४ बजेसे।
नवमी ,, ११।३७ बजेतक	बुध	उ०फा० ,, ९।३७ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।३२ बजेसे।
दशमी ,, ९।२७ बजेतक	गुरु	हस्त प्रात: ८।८ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ९।२७ बजेतक, **उत्पन्ना एकादशीव्रत (स्मार्त्त), तुलाराशि** रात्रिमें ७।१९ बजेसे।
एकादशी प्रात: ७।९ बजेतक	शुक्र	स्वाती रात्रिमें ४।४९ बजेतक	११ ,,	**एकादशीव्रत पारणा** प्रात: ७।९ बजेसे, **एकादशीव्रत (वैष्णव)।**
त्रयोदशी रात्रिमें २।२६ बजेतक	शनि	विशाखा ,, ३।११ बजेतक	१२ ,,	**शनिप्रदोषव्रत, भद्रा** रात्रिमें २।२६ बजेसे, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें ९।३५ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १२।१४ बजेतक	रवि	अनुराधा ,, १।३८ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें १।२१ बजेतक, **मूल** रात्रिमें १।३८ बजेसे।
अमावस्या ,, १०।११ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा ,, १२।१६ बजेतक	१४ ,,	**सोमवती अमावस्या, धनुराशि** रात्रिमें १२।१६ बजेसे।

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ८।२४ बजेतक	मंगल	मूल रात्रिमें ११।१० बजेतक	१५ दिसम्बर	**मूल** रात्रिमें ११।१० बजेतक।
द्वितीया ,, ६।५७ बजेतक	बुध	पू०षा० ,, १०।२६ बजेतक	१६ ,,	**धनुसंक्रान्ति** प्रात: ६।४९ बजे, **खरमासारम्भ, मकरराशि** रात्रिमें ४।२० बजेसे।
तृतीया ,, ५।५३ बजेतक	गुरु	उ०षा० ,, १०।५ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५।३५ बजेसे।
चतुर्थी सायं ५।१७ बजेतक	शुक्र	श्रवण ,, १०।११ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** सायं ५।१७ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ५।११ बजेतक	शनि	धनिष्ठा ,, १०।४७ बजेतक	१९ ,,	**श्रीरामविवाह, पञ्चकारम्भ** दिनमें १०। २९ बजे, **कुम्भराशि** दिनमें १०।२९ बजेसे।
षष्ठी ,, ५।३६ बजेतक	रवि	शतभिषा ,, ११।५३ बजेतक	२० ,,	**श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत।**
सप्तमी रात्रिमें ६।३३ बजेतक	सोम	पू०भा० ,, १।२७ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ६।३३ बजेसे, **मीनराशि** रात्रिमें ७।४ बजेसे, **सायन मकरका सूर्य** रात्रिमें १।६ बजे।
अष्टमी ,, ७।५६ बजेतक	मंगल	उ० भा० ,, ३।२९ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** प्रात: ७।१५ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ३।२९ बजेसे।
नवमी ,, ९।४३ बजेतक	बुध	रेवती रात्रिशेष ५।५० बजेतक	२३ ,,	**मेषराशि** रात्रिशेष ५।५० बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिशेष ५।५० बजे।
दशमी ,, ११।४६ बजेतक	गुरु	अश्वनी अहोरात्र	२४ ,,	× × × ×
एकादशी ,, १।५७ बजेतक	शुक्र	अश्विनी प्रात: ८।२४ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।५२ बजे रात्रिमें १।५७ बजेतक, **मोक्षदा एकादशीव्रत (सबका), श्रीगीताजयंती, मूल** प्रात: ८।२४ बजेतक।
द्वादशी ,, ४।४ बजेतक	शनि	भरणी दिनमें ११।२ बजेतक	२६ ,,	**वृषराशि** सायं ५।३९ बजेसे।
त्रयोदशी रात्रिशेष ५।५६ बजेतक	रवि	कृत्तिका ,, १।३१ बजेतक	२७ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी अहोरात्र	सोम	रोहिणी ,, ३।४५ बजेतक	२८ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ४।४१ बजेसे।
चतुर्दशी प्रात: ७।२८ बजेतक	मंगल	मृगशिरा सायं ५।३७ बजेतक	२९ ,,	**व्रत-पूर्णिमा, भद्रा** प्रात: ७।२८ बजेसे रात्रिमें ८।० बजेतक, पू०षा० का सूर्य प्रात: ७।४७ बजे।
पूर्णिमा दिनमें ८।३२ बजेतक	बुध	आर्द्रा रात्रिमें ७।२ बजेतक	३० ,,	**पूर्णिमा, कर्कराशि** दिनमें १।४३ बजेसे।

व्रतोत्सव-पर्व

संं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०-२०२१, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९। ८ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु रात्रिमें ७।५६ बजेतक	३१ दिसम्बर	× × × ×
द्वितीया ,, ९।१० बजेतक	शुक्र	पुष्य ,, ८।१९ बजेतक	१ जनवरी	**भद्रा** रात्रिमें ८। ५७ बजेसे, **मूल प्रारम्भ** रात्रिमें ८। १९ बजेसे, सन् २०२१ प्रारम्भ।
तृतीया ,, ८।४३ बजेतक	शनि	आश्लेषा ,, ८।१३ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।४३ बजेतक, **सिंहराशि** रात्रिमें ८।१३ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।२६ बजे।
चतुर्थी प्रात: ७।४७ बजेतक	रवि	मघा ,, ७।४२ बजेतक	३ ,,	**मूल** रात्रिमें ७।४२ बजेतक।
षष्ठी रात्रिमें ४।४७ बजेतक	सोम	पू०फा० ,, ६।५१ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ४।४७ बजेसे, **कन्याराशि** रात्रिमें १२।३३ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें २।४९ बजेतक	मंगल	उ०फा० सायं ५।३८ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** सायं ३।४८ बजेतक।
अष्टमी ,, १२।३७ बजेतक	बुध	हस्त ,, ४।१२ बजेतक	६ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ३।२४ बजेसे, **अष्टकाश्राद्ध।**
नवमी ,, १०।१९ बजेतक	गुरु	चित्रा दिनमें २।३६ बजेतक	७ ,,	× × × ×
दशमी ,, ७।५७ बजेतक	शुक्र	स्वाती ,, १२।५६ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ८ बजेसे रात्रिमें ७।५७ बजेतक, **वृश्चिकराशि** रात्रिशेष ५।४१ बजेसे।
एकादशी सायं ५।३८ बजेतक	शनि	विशाखा ,, ११।१७ बजेतक	९ ,,	**सफला एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी दिनमें ३।२४ बजेतक	रवि	अनुराधा ,, ९।४१ बजेतक	१० ,,	**प्रदोषव्रत, मूल** दिनमें ९।४१ बजेसे।
त्रयोदशी ,, १।२४ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा ,, ८।१७ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें १।२४ बजेसे रात्रिमें १२।३१ बजेतक, **धनुराशि** दिनमें ८।१७ बजेसे, **उ०षा०** का सूर्य दिनमें ८।२४ बजे।
चतुर्दशी ,, ११।३८ बजेतक	मंगल	मूल प्रात: ७। ८ बजेतक	१२ ,,	**श्राद्धकी अमावस्या, मूल** प्रात: ७।८ बजेतक।
अमावस्या ,, १०।१३ बजेतक	बुध	उ०षा० रात्रिशेष ५।५२ बजेतक।	१३ ,,	**अमावस्या, मकरराशि** दिनमें ११।५४ बजेसे।

संं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन-उत्तरायण, हेमन्त-शिशिर-ऋतु, पौष-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९।१२ बजेतक	गुरु	श्रवण रात्रिशेष ५।५१ बजेतक	१४ जनवरी	**मकरसंक्रान्ति** दिनमें २।३७ बजे, **सूर्यास्ततक पुण्यकाल, खिचड़ी, उत्तरायण प्रारम्भ, खरमास समाप्त, शिशिरऋतु प्रारम्भ।**
द्वितीया ,, ८।३८ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ,, ६।१९ बजेतक	१५ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ६।४ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ६।४ बजे।
तृतीया ,, ८।३५ बजेतक	शनि	शतभिषा अहोरात्र	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।४९ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी दिनमें ९।४ बजेतक	रवि	शतभिषा प्रात: ७।१८ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।४ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें २।२८ बजेसे।
पंचमी ,, १०।२ बजेतक	सोम	पू० भा० दिनमें ८।५१ बजेतक	१८ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, ११।२८ बजेतक	मंगल	उ०भा० ,, १०।४३ बजेतक	१९ ,,	**मूल** दिनमें १०।४३ बजेसे।
सप्तमी ,, १।१७ बजेतक	बुध	रेवती ,, १२।५९ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें १।१७ बजेसे रात्रिमें २।१९ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें १२।५९ बजेसे, **पंचक** समाप्त दिन १२।५२ बजे, **सायनकुम्भका सूर्य** दिनमें ८।४८ बजे।
अष्टमी ,, ३।२१ बजेतक	गुरु	अश्वनी ,, ३।३१ बजेतक	२१ ,,	**मूल** दिनमें ३।३१ बजेतक।
नवमी सायं ५।३१ बजेतक	शुक्र	भरणी रात्रिमें ६।८ बजेतक	२२ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें १२।४६ बजेसे।
दशमी रात्रिमें ७।३८ बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, ८।४१ बजेतक	२३ ,,	× × × ×
एकादशी ,, ९।२८ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, १०।५८ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।३२ बजेसे रात्रिमें ९।२८ बजेतक, **पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका), श्रवणका सूर्य** दिनमें ९।३३ बजे।
द्वादशी ,, १०।५८ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, १२।५६ बजेतक	२५ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें ११।५७ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ११।५९ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, २।२६ बजेतक	२६ ,,	**भौमप्रदोषव्रत, भारतीय गणतन्त्र-दिवस।**
चतुर्दशी ,, १२।३२ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, ३।३८ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।३२ बजेसे, **कर्कराशि** रात्रिमें ९।१३ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १२।३२ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, ३।५७ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।३१ बजेतक, **पूर्णिमा, मूल** रात्रिमें ३।५७ बजेसे, माघस्नान प्रारम्भ।

कृपानुभूति

माँ गंगाकी कृपा

बचपनसे ही मैं माँ गंगाका परम भक्त था और मेरी आस्था माँके चरणोंमें थी। विद्यार्थी-जीवनसे ही मैं माँ गंगाके पावन जलमें प्रतिदिन (बिना किसी नागाके) हर मौसममें स्नान अवश्य करता था। गंगाजीकी कृपासे मेरी नियुक्ति भी प्रयागराजमें हो गयी थी, अतः नौकरीके समय भी मेरा यह क्रम अनवरत जारी रहा। मैं हर कुम्भ, अर्धकुम्भ एवं विशेष पर्वोंपर भी नौकरीके दौरान अवकाश लेकर माघ मेलेमें गंगा-स्नानहेतु जाया करता था। सन् २००० ई०में सेवानिवृत्त हो जानेके बाद मैं अपने पुत्रके पास मुम्बईमें रहने लगा था, परंतु माँ गंगाके प्रति इसी आस्थाके कारण सन् २०१९के अर्धकुम्भमें भी स्नान करनेके लिये मैं अपनी धर्मपत्नीके साथ वहाँसे प्रयाग आ गया था।

कुछ लापरवाहीके कारण मेरी पत्नीको गणेश चौथके व्रतके दौरान ठण्ड लग गयी और वह गम्भीर रूपसे बीमार पड़ गयी। नतीजा यह हुआ कि उसे दिनांक २६ जनवरी २०१९ को रात्रि १० बजे अस्पतालमें भरती करना पड़ा। पत्नीको अस्पतालके आई०सी०यू० वार्डमें रखा गया। चेस्टस्पेशलिस्टकी देख-रेखमें इलाज शुरू हुआ। तमाम जरूरी जाँचें की गयीं। माँ गंगाकी असीम कृपासे सभी जाँचें ठीक निकलीं और मेरी पत्नीको दिनांक ३ फरवरी २०१९ को अस्पतालसे छुट्टी मिल गयी।

दूसरे दिन दिनांक ४ फरवरी २०१९को मौनी अमावस्याका स्नान-पर्व था। एक हृदयरोगी होनेके नाते मैंने घरपर ही स्नान, पूजा-पाठ कर लिया। तत्पश्चात् माँ गंगाके चरणोंमें दूध-फूल अर्पित करनेके लिये निकल पड़ा, परंतु मेरे मनमें इस बातकी बार-बार पीड़ा उठती थी कि प्रयागमें होते हुए भी गंगा-स्नान न कर सकनेके कारण मेरा जीवनभरका व्रत आज खण्डित हो रहा है। मैं माता गंगाकी गोदमें अवगाहनका सुख नहीं ले पा रहा हूँ। कुछ ही दूर जानेके बाद अन्दरसे यह प्रेरणा मिली कि आज मौनी अमावस्याका महान् पर्व है, काफी संख्यामें श्रद्धालु लोग बाहरसे स्नानहेतु यहाँ आये हुए हैं। हम भी माँ गंगामें क्यों न दो-चार डुबकी लगा लें; क्योंकि माँ गंगाकी असीम कृपासे ही पत्नी स्वस्थ होकर मौनी अमावस्याके एक दिन पूर्व घरपर आ गयी है। इस प्रेरणाके तहत मैं घर लौटकर तौलिया आदि लेकर चल पड़ा। कुछ ही दूर चलनेपर फिर अन्दरसे प्रेरणा मिली कि ठण्ड बिलकुल सामान्य है, क्यों न त्रिवेणी संगममें ही स्नान कर लिया जाय। मुझे माँ गंगाकी इस प्रेरणामें एक अद्‌भुत चमत्कारका अनुभव हुआ और मैं संगमतक चला गया। मैंने बिना किसी असुविधाके अनेकानेक बार डुबकी लगायी और माँ गंगाकी पूजा-अर्चना की तथा घर वापस आ गया। अमावस्याके पावन-पर्वपर त्रिवेणी संगममें स्नानसे मुझे एक अपूर्व शान्तिका अनुभव हुआ, जिसे मैं शब्दोंमें नहीं व्यक्त कर सकता। मुझे तो बस यही लगता है कि मुझपर कृपाकर पतितपावनी माँ गंगाने सारी विपरीत परिस्थितियोंको अनुकूल बना दिया। उनकी कृपा कभी भुलाये भी नहीं भूल पाती।

मैं तो यही समझता हूँ कि उनकी ही कृपासे मेरी पत्नी स्वस्थ होकर घर आ गयी और मौनी अमावस्याके दिन ठण्डक कम हो गयी, जबकि प्रायः मौनी अमावस्याको वर्षा हो जानेसे ठण्डक बढ़ जाती है। अतः माँ गंगाने ही परिस्थितियाँ अनुकूलकर मुझे स्नान और दर्शनका सौभाग्य दिया और मेरी हार्दिक इच्छा पूर्ण की।

सर्वपापहारिणी पुण्यसलिला माँ गंगासे मेरी प्रार्थना है कि वे अपनी असीम कृपा अपने सभी भक्तोंपर सदैव बनाये रखें। —**लल्लन प्रसाद चौरसिया**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

दुआएँ

मैं जब भी अपने गृहनगर जाता था तो दाढ़ी-कटिंग एक परिचित नाईकी दूकानपर करवाता था। गाँवके रिश्तेसे मैं उसे भैया कहता था। एक बार मैं जब उसकी दूकानपर गया, तब वह एक बीमार-से दिखनेवाले, फटे-मैले-कुचैले कपड़े पहने वृद्धकी कटिंग उसी लगनसे कर रहा था, जिस लगनसे वह मेरी कटिंग करता था। मेरे मनमें आभिजात्य स्वच्छताका विचार आया। मैंने मन-ही-मन विचार किया कि अब भविष्यमें इस दूकानपर नहीं आऊँगा। दूकानपर तीन-चार और लोग भी बैठकर अपनी बारीका इन्तजार कर रहे थे। सम्भवत: वे भी यही सोच रहे थे। इतनेमें उस व्यक्तिकी कटिंग पूरी हुई, वह उठा और बगैर पैसे दिये, नाईको दुआएँ देता हुआ चला गया। मैंने व्यंग्य करते हुए नाईसे पूछा—'यह तुम्हारा खास ग्राहक है क्या?'

उसने हँसते हुए जवाब दिया—'हाँ भइया, खास ग्राहक ही है।' तब तो वह ज्यादा आदाब (कटिंगका पारिश्रमिक) देता होगा। मैंने पुन: व्यंग्य किया।

'हाँ भइया' उसने जवाब दिया। 'आपके सामने ही तो देकर गया है।'

मुझे तो कुछ भी देते हुए नहीं दिखा। मैंने अन्य ग्राहकोंकी ओर देखकर पूछा—आप लोगोंने देखा, वह कितने पैसे देकर गया? बैठे हुए सभी ग्राहकोंने अनभिज्ञता जतायी। तब नाईकी ओर मुखातिब होकर मैंने पूछा, 'हमने या किसीने भी उसे तुमको पैसे देते नहीं देखा। तुम ही बताओ वह तुमको कितने पैसे देकर गया?'

उसने जवाब दिया—'आपके सामने ही तो बहुत-सी दुआएँ देकर गया, पर मैंने कब कहा कि पैसे दिये। वह अनमोल दुआएँ देकर गया, इससे बड़ा पारिश्रमिक और क्या चाहिये। मेरे स्वर्गीय पिताजी कह गये हैं कि जिसके पास जो है, उससे वही मेहनताना लो। पैसेसे पेट भरेगा, दुआसे सुख-शान्ति मिलेगी।'

समयके साथ-साथ मैं यह घटना भूल गया। मेरी सेवानिवृत्ति हो गयी। एक बार पुत्रीके स्थानान्तरणके सिलसिलेमें मन्त्रालयमें उपसचिवसे मैं भेंट करने गया। मिलनेके लिये चिट भिजवायी। उम्मीदके खिलाफ मुझे तत्काल कक्षमें बुलवाया गया। जैसे ही मैं अन्दर गया, नवजवान उपसचिव अपनी कुर्सीसे उठे। उन्होंने मेरे पैर छुए। सम्मानसे कुर्सीपर बैठाया। मैं ठगा-सा इस सतयुगी व्यवहारको समझनेके लिये बुद्धिपर जोर दे रहा था कि नवजवान उपसचिवकी आवाजसे चौंक गया।

'काका! आप मुझे पहचाने नहीं। मैं मंगू नाईका छोटा बेटा रमेश हूँ, आपका रम्मू।' कभी-कभी मैं आपकी दाढ़ीमें साबुन लगाकर और सिरमें मालिशकर पिताजीका हाथ बँटाता था। पिछले वर्ष पिताजीका स्वर्गवास हो गया। कभी-कभी वे आप लोगोंकी बातें किया करते थे। बड़े भइया···में मैनिजिंग डायरेक्टर हैं···

मैं अपने सामने बैठे सुसंस्कारवान् युवकको ऐसे देख रहा था, जैसे वह मंगू नाईका बेटा रम्मू न होकर, अनमोल दुआओंका खजाना हो।—**श्रीहरि गुहा**

(२)

सतीत्वका तेज

तीन दशक पुरानी बात है। संयमित जीवनकी मिसाल, मेरे पिताजी, जो लगभग ८२ वर्षके थे। सामान्य से १-२ दिनके बुखारके बाद एकाएक कोमामें चले गये। उस समयके स्थानीय सर्वोत्तम योग्य चिकित्सकोंकी देख-रेखमें मिशन अस्पतालमें उनका इलाज प्रारम्भ हुआ। दिन-पर-दिन बीतते गये। उपलब्ध चिकित्सा एवं जीवनरक्षक साधनोंपर रहते हुए भी उनका बेसुध शरीर क्षीण होता गया। वह दिन आया, जब डॉक्टरोंने घर ले जानेकी सलाह दी और शेष जीवनको कुछ समयका ही बताया। मेरे बड़े भाईने अंतिम समय जानकर घरपर आवश्यक व्यवस्था करनेका निर्देश दिया। मैं हतप्रभ था और अंतिम समय पिताको छोड़ना नहीं चाहता था। एकाएक मेरी माँ, जो अस्पतालमें भी सतत सेवामें थीं, मुझे एक ओर ले गयीं। अपने शरीरसे सुहागके जेवर उतारकर एक पोटलीमें

देकर कहा कि 'इन्हें कुलदेवीके स्थानपर आन जानकर रख देना।' उनके चेहरेपर विश्वासका अपूर्व तेज था। उन्होंने कहा कि 'मैंने वर्षों सूर्यको अर्घ्य दिया है, मैं सधवा ही जाऊँगी।' मैंने उनकी आज्ञाका पालन किया। एक रात और बीती। सुबह जब पिताजीके शरीरको स्प्रिटसे स्पंज कर रहा था तो मुझे पैरपर ललाई दिखी। डॉक्टरको दिखाया तो उन्होंने तत्काल वहीं सुईसे परीक्षणकर जाँघमें लगभग १० इंचका चीरा लगा दिया। ढेर सारा रक्तमिश्रित मवाद निकालकर ड्रेसिंग उपरान्त डॉक्टरने सन्तोषकी साँस ली। दो दिनमें ही शरीरमें चेतनाका संचरण प्रारम्भ हुआ। कालान्तरमें ५-६ माह सामान्य चिकित्सापर उन्होंने स्वस्थ जीवनके १७ वर्ष और निकाले। इस बीच उन्होंने माँकी भी सेवा की। लगभग एक दशकके सान्निध्यके बाद मेरी माँने प्राण त्यागे। मुझे याद आये उनके शब्द, जो सूर्यको अर्घ्य देनेके बाद वे प्रार्थनामें कहती थीं, 'पति और बच्चोंके काँधे मौत देना।' शवयात्रामें यही दृश्य था। मेरी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी, परंतु मस्तिष्क एक अनपढ़ महिलाके स्वपालित धर्मके प्रति आस्था एवं विश्वासकी पराकाष्ठासे चमत्कृत था। आज भी उनके सतीत्वके तेज और उस आस्थाके प्रति नतमस्तक हूँ।

—गोपाल सिंह चौहान

(३)

गीताजीके पाठ और हवनसे रोगमुक्ति

गर्त वर्षकी बात है, मेरा अचानक ब्लडप्रेशर बढ़ने लगा और जब ब्लडप्रेशर बढ़ता तो तेज बुखार भी हो जाता। इस प्रकार बुखार और ब्लडप्रेशरका संयोग चलता रहा। चूँकि मैं चित्रकूटधामके आयुषग्राम (ट्रस्ट)-के विभिन्न प्रकल्पों—गोसेवालय, गुरुकुल तथा चिकित्सालय आदिमें विगत कई वर्षोंसे पूरी तरहसे समय और सेवादान देती आ रही हूँ, अत: मैंने यहीं चिकित्सा करानेका निश्चय किया।

यहाँके चिकित्सालयमें मेरे परिचित डॉक्टरोंकी टीम कार्यरत है। मेरा स्वास्थ्य खराब होनेपर यहाँके डॉक्टरोंने जो जाँचें यहाँ हो सकती थीं, यहाँ करायीं और चिकित्सा की, पर उससे स्थायी लाभ नहीं मिला। ब्लडप्रेशर और ज्वर बार-बार लौटकर वापस आ जाता। डॉक्टरोंने कुछ और जाँचें करायीं, कोलस्ट्राल, सुगर आदि सब सामान्य निकला तो उधर ज्वरकी जाँचोंमें मलेरिया, टाइफाइड, डेंगू और भी तमाम तरहकी जाँचें करायीं, पर उसमें भी कुछ नहीं निकला।

एक दिन मुझे संस्थाके कार्यवश आयुषग्राम ट्रस्ट चित्रकूटकी मातृसंस्था दिव्यचिकित्साभवन, पनगरा बाँदा जाना पड़ा। वहाँ पहुँचते-पहुँचते मेरी तबियत ज्यादा बिगड़ गयी। वहाँकी नर्सोंने मेरा ब्लडप्रेशर चेक किया, तो वह बहुत बढ़ा हुआ निकला। साथमें बुखार भी चढ़ गया। मुझे दिव्यचिकित्साभवनसे रातमें ही आयुषग्राम (ट्रस्ट) चित्रकूटधाम लाया गया। चिकित्सालयमें भर्ती किया गया, दवाइयाँ चलीं, उससे कुछ राहत तो मिली, किन्तु पूरी तरहसे शारीरिक परेशानी नहीं गयी। दवाइयाँ और चिकित्सा चलती रही, लेकिन एक दिन अचानक मेरा ब्लडप्रेशर बहुत अधिक बढ़ गया। डॉक्टरोंने किसी तरहसे उसे नियंत्रित किया, पर सबसे बड़ी समस्या यह थी कि न तो रोगका कोई कारण पकड़में आ रहा था और न ही किसी भी प्रकारका उपचार कारगर हो पा रहा था। पूरे ट्रस्टकी संवेदना और सहानुभूति मेरे साथ थी। जहाँतक दवाइयोंकी बात है, बहुत अच्छी दवाइयाँ दी जा रही थीं, किन्तु आराम बिलकुल नहीं मिल रहा था।

२५ दिसम्बर २०१९की शामको संस्थानके बड़े डॉक्टर साहब और साथमें स्टाफके अन्य सदस्य मेरे रूममें आये। उन्होंने देखा कि अभी भी सिरदर्द और बुखार बना हुआ है, सारी दवाएँ निष्फल हैं, अभीतककी जाँचोंमें कुछ निकल नहीं सका। उन्होंने कुछ और जाँचें करायीं, पर उसमें भी सब कुछ सामान्य ही आया। तभी बड़े डॉक्टर साहब फिर मेरे कक्षमें आये और कहा कि अब हम भगवान्‌की शरण लेंगे। इस संकटकी घड़ीमें वे ही एकमात्र शरण्य हैं। उन्होंने गज और ग्राहका दृष्टान्त दिया और फिर कहा कि कल २६ दिसम्बर २०१९को सूर्यग्रहण होना है। सूर्यग्रहणके मोक्षोपरान्त हम सब लोग एक हवनका आयोजन करेंगे, जिसमें गीताके सात सौ श्लोकोंसे सात सौ आहुतियाँ होंगी, हम स्वयं गीताका सम्पूर्ण पाठ करेंगे। इस गीतापाठ और हवन-यज्ञका जो पुण्य होगा,

वह आपको समर्पित किया जायगा। इतना संकल्प करके सभी लोग मेरे कक्षसे बाहर चले गये। मेरी सभी दवाएँ भी बन्द कर दी गयीं, केवल अमृतक्वाथ दिया जाने लगा। मेरी भी बाल्यकालसे ही गीतापर बहुत श्रद्धा है; क्योंकि मेरे पिताजी स्वयं नित्य गीतापाठ करते थे। वही संस्कार हम सबमें भी पड़े हैं।

मैंने अनुभव किया कि इस संकल्पके थोड़ी देर बादसे ही मेरा ज्वर, सिरदर्द धीरे-धीरे घटने लगा और रातमें मुझे ठीक ढंगसे नींद भी आयी, जबकि इससे पहले मुझे पाँच रातोंतक नींद ही नहीं आयी थी। सुबह चिकित्सालयमें राउण्डके समय नर्स और डॉक्टर मेरे कक्षमें आये। मेरा ब्लडप्रेशर और टेम्परेचर लिया गया, जो कि सामान्य निकला। यह देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। प्रातः २६ दिसम्बर २०१९ को लगभग साढ़े बारह बजे सूर्यग्रहणका मोक्ष हुआ, सभीने स्नान करके गीताजीका पाठ किया और उसीसे आहुति दी। बड़े डॉक्टर साहबने स्वयं गीताजीका पाठ किया। हवनके समय मैं भी वहीं पासके कमरेमें बैठी रही। मुझे श्रीमद्भगवद्गीताके एक-एक श्लोकके पाठ और आहुतिसे ऐसी अनुभूति हो रही थी कि मानो मेरा रोग परमात्मा मेरे शरीरसे बाहर कर रहे हैं। श्रीमद्भगवद्गीताजीके पाठ और हवनके बाद बड़े डॉक्टर साहबने हाथमें जल लेकर कहा कि आजके श्रीमद्भगवद्-गीताके पाठ और हवनका फल आपको दिया जा रहा है। आप सभी व्याधियोंसे मुक्त हों। श्रीमद्भगवद्गीताकी कृपासे उस दिनके बादसे मेरा ज्वर और ब्लडप्रेशर, जो कि सैकड़ों अच्छी-अच्छी दवाइयोंसे भी नहीं मिटा था, वह पूरी तरहसे मिट गया। श्रीमद्भगवद्गीता साक्षात् परमात्मा योगेश्वर श्रीकृष्णके मुखसे निकली हुई है। सांसारिक कष्टोंके निवारणमें गीताजीकी कृपाका लाभ सभीको उठाना चाहिये, यह मेरा अनुभव है।—**श्रीमती उषाजी**

(४)

सकारात्मक भाव

एक नया मन्दिर बन रहा था। एक यात्री उस नवनिर्मित मन्दिरको देखनेके लिये रुक गया। उस स्थानपर अनेक मजदूर और कारीगर काम कर रहे थे। पत्थर तोड़े जा रहे थे। पत्थर तोड़नेवाले एक मजदूरसे यात्रीने पूछा—'तुम क्या कर रहे हो?'

मजदूरने क्रोधसे अपने हथौड़ेको रोका और कहा—'क्या आपको दिखायी नहीं पड़ता? मैं पत्थर तोड़ रहा हूँ।' इतना कहकर वह फिर पत्थर तोड़ने लगा। यात्री आगे बढ़ा। उसने पत्थर तोड़ते हुए दूसरे मजदूरसे भी पूछा—'मित्र! क्या कर रहे हो?' उसने उदासीके साथ आँखें ऊपर उठायीं और कहा—'बस रोजी-रोटी कमा रहा हूँ।' वह फिर पत्थर तोड़ने लगा। वह यात्री और आगे बढ़ा तथा मन्दिरकी सीढ़ियोंके पास पत्थर तोड़ते हुए तीसरे मजदूरसे भी उसने वही प्रश्न पूछा, 'क्या काम कर रहे हो?' वह मजदूर गीत गुनगुनाते हुए पत्थर तोड़ रहा था, वह रुका, अपनी आँखें ऊपर उठायीं और खुशीसे बोला—'मैं ईश्वरका मन्दिर बना रहा हूँ।' फिर वह गीत गुनगुनाते हुए अपने काममें तल्लीन हो गया।

यात्री चकित हो गया। उसने स्वयंसे कहा कि तीनों लोग पत्थर ही तोड़ रहे हैं, तीनों को मजदूरी भी समान ही मिलती है, किंतु तीनोंकी मनोदशा भिन्न है, इसीलिये तीनोंने एक ही प्रश्नके अलग-अलग उत्तर दिये। इन तीनों मजदूरोंकी तरह मनुष्य भी तीन तरहके होते हैं, जो अपने जीवनके मन्दिरके निर्माणमें लगे हुए हैं। कोई क्रोधसे भरा रहता है, कोई उदासीसे भरा रहता है, लेकिन कोई आनन्दसे भर जाता है, क्योंकि वह परमात्माका मन्दिर बना रहा है। जीवनको हम जैसा देखते हैं, वैसी ही हमारी अनुभूति भी बन जाती है। आनन्दसे भरनेकी जो दृष्टि होती है, वही उत्तम है। हो सकता है कि पत्थर तोड़ते-तोड़ते उसकी ईश्वरसे मुलाकात भी हो जाय। आनन्दके अतिरिक्त परमात्माके निकट पहुँचनेका कोई और द्वार नहीं। जो क्रोध और पीड़ाके साथ काम कर रहा है, उसके हाथ कुछ भी नहीं लग सकता है। जो दूसरा उदास और दुखी है, वह अपने जीवनमें उदासी और दुखको ही फैला हुआ देख ले तो आश्चर्य नहीं। हम वही अनुभव करते हैं, जो हमारा अन्तर्भाव होता है। इसलिये आवश्यकता होती है सकारात्मक अन्तर्भावकी और यही उसके सत्पथको प्रशस्त करता है।—**डॉ० सुनील कुमार सारस्वत**

मनन करने योग्य

सत्कारसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं

पाण्डवोंका वनवास-काल समाप्त हो गया। दुर्योधनने युद्धके बिना उन्हें पाँच गाँव भी देना स्वीकार नहीं किया। युद्ध अनिवार्य समझकर दोनों पक्षसे अपने-अपने पक्षके नरेशोंके पास दूत भेजे गये युद्धमें सहायता करनेके लिये। मद्रराज शल्यको भी दूतोंके द्वारा युद्धका समाचार मिला। वे अपने महारथी पुत्रोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवोंके पास चले।

शल्यकी बहिन माद्रीका विवाह पाण्डुसे हुआ था। नकुल और सहदेव उनके सगे भानजे थे। पाण्डवोंको पूरा विश्वास था कि शल्य उनके पक्षमें युद्धमें उपस्थित रहेंगे। महारथी शल्यकी विशाल सेना दो-दो कोसपर पड़ाव डालती धीरे-धीरे चल रही थी।

दुर्योधनको शल्यके आनेका समाचार पहले ही मिल गया था। उसने मार्गमें जहाँ-जहाँ पड़ावके उपयुक्त स्थान थे, जल तथा पशुओंके लिये तृणकी सुविधा थी, वहाँ-वहाँ निपुण कारीगर भेजकर सभा-भवन एवं निवास-स्थान बनवा दिये। सेवामें चतुर सेवक वहाँ नियुक्त कर दिये। भोजनादिकी सामग्री रखवा दी। ऐसी व्यवस्था कर दी कि शल्यको सब कहीं पूरी सुख-सुविधा प्राप्त हो। वहाँ कुएँ और बावलियाँ बनवा दीं।

मद्रराज शल्यको मार्गमें सभी पड़ावोंपर दुर्योधनके सेवक स्वागतके लिये प्रस्तुत मिले। उन सिखलाये हुए सेवकोंने बड़ी सावधानीसे मद्रराजका भरपूर सत्कार किया। शल्य यही समझते थे कि वह सब व्यवस्था युधिष्ठिरने की है। इस प्रकार विश्राम करते हुए वे आगे बढ़ रहे थे। लगभग हस्तिनापुरके पास पहुँचनेपर उन्हें जो विश्राम-स्थान मिला, वह बहुत ही सुन्दर था। उसमें नाना प्रकारकी सुखोपभोगकी सामग्रियाँ भरी थीं। उस स्थानको देखकर शल्यने वहाँ उपस्थित कर्मचारियोंसे पूछा—'युधिष्ठिरके किन कर्मचारियोंने मेरे मार्गमें ठहरनेकी व्यवस्था की है? उन्हें ले आओ। मैं उन्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ।'

दुर्योधन स्वयं छिपा हुआ वहाँ शल्यके स्वागतकी व्यवस्था कर रहा था। शल्यकी बात सुनकर और उन्हें प्रसन्न देखकर वह सामने आ गया और हाथ जोड़कर प्रणाम करके बोला—'मामाजी! आपको मार्गमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ?'

शल्य चौंके। उन्होंने पूछा—'दुर्योधन! तुमने यह व्यवस्था करायी है?'

दुर्योधन नम्रतापूर्वक बोला—'गुरुजनोंकी सेवा करना

तो छोटोंका कर्तव्य ही है। मुझे सेवाका कुछ अवसर मिल गया—यह मेरा सौभाग्य है।'

शल्य प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—'अच्छा, तुम मुझसे कोई वरदान माँग लो।'

दुर्योधनने माँगा—'आप सेनाके साथ युद्धमें मेरा साथ दें और मेरी सेनाका संचालन करें।'

शल्यको स्वीकार करना पड़ा यह प्रस्ताव। यद्यपि उन्होंने युधिष्ठिरसे भेंट की, नकुल-सहदेवपर आघात न करनेकी उनकी प्रतिज्ञा दुर्योधनको बता दी और युद्धमें कर्णको हतोत्साह करते रहनेका वचन भी युधिष्ठिरको दे दिया; किंतु युद्धमें उन्होंने दुर्योधनका पक्ष लिया।

[महाभारत, उद्योगपर्व]

श्रीगीता-जयन्ती [२५ दिसम्बर, २०२० ई०]

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ (गीता ६। ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्‌में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ-साथ कर्तव्य-कर्मपर आरूढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' ही है। इस ग्रन्थका विश्वमें जितना अधिक वास्तविक रूपमें प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही मानव सच्चे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ सकेगा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), शुक्रवार, दिनाङ्क २५ दिसम्बर, २०२० ई०को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्‌का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (६) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (७) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

आजकल कोरोना वायरसके कारण फैली महामारीका खतरा अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। अतः इस सम्बन्धमें भी सबको सावधानी बरतनी चाहिये। **—सम्पादक**

अब उपलब्ध

गीता-सुधातरंगिनी—कोड 508, पुस्तकाकार—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजद्वारा रचित गीता-साधक-संजीवनीके आधारपर लिखी गयी इस पुस्तकमें चौपाई, दोहा, छन्द और सोरठाके रूपमें सम्पूर्ण गीताका पद्यानुवाद दिया गया है। प्रस्तुत पुस्तक गीताप्रेमी पाठकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹ २०

प्र० ति० 20-10-2020
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

जनवरी सन् २०२१ ('कल्याण' वर्ष ९५)-का विशेषाङ्क—'श्रीगणेशपुराणाङ्क'

[श्लोकाङ्कसहित सम्पूर्ण हिन्दी भाषानुवाद]

'**श्रीगणेशपुराण**' गणपति-उपासनाका प्रतिनिधि ग्रन्थ है। यह पुराण उपासनाखण्ड और क्रीडाखण्ड नामक दो खण्डोंसे समन्वित है। गणेशपुराणकी गणना उपपुराणोंमें प्रथम उपपुराणके रूपमें होती है। गणपति भक्त इसे 'गणेश-भागवत' कहकर भागवतमहापुराण-सदृश आदर देते हैं। इसके उपासनाखण्डमें गणपतिसहस्रनामस्तोत्र, गणेशचतुर्थी, संकष्टचतुर्थी आदि व्रतोंकी कथाओंके साथ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, आदि देवताओं, ऋषि-मुनियों, राजाओं और गणेश-भक्तोंद्वारा की गयी उनकी उपासनाकी कथाएँ भी सम्मिलित हैं। क्रीडाखण्डमें 'गणेशगीता', भगवान् गणेशकी बाल-लीलाओं एवं उनके महोत्कट, विनायक आदि अवतारोंका वर्णन है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण पुराण रोचक एवं भक्तिपरक लीलाकथाओंसे परिपूर्ण है।

आशा है अन्य विशेषाङ्कोंकी भाँति यह 'श्रीगणेशपुराणाङ्क भी सभीके लिये संग्राह्य एवं उपादेय होगा।

कल्याणके विषयमें जानकारीके लिये 09235400242 अथवा 09235400244 पर प्रत्येक कार्य-दिवसमें 9:30 बजेसे 12:30 बजेतक एवं 2:00 बजेसे 5:00 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त 9648916010 पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

वार्षिक-शुल्क—₹२५०। पंचवर्षीय-शुल्क—₹१२५०

कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। अङ्कोंके न मिलनेकी शिकायतें बहुत अधिक आने लगी हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये **वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹250 के अतिरिक्त ₹200 देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है। इस सुविधाका लाभ उठाना चाहिये।**

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर **Kalyan** option को click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—व्रत-कथाओंकी पुस्तकें

व्रत-परिचय (कोड 610)—प्रस्तुत पुस्तकमें प्रत्येक मासमें पड़नेवाले व्रतोंके विस्तृत परिचयके साथ उन्हें सही ढंगसे सम्पादित करनेकी विधि दी गयी है। मूल्य ₹ ६०

एकादशीव्रतका माहात्म्य (मोटा टाइप) कोड 1162—इस पुस्तकमें पद्मपुराणके आधारपर 26 एकादशियोंके माहात्म्य तथा विधिका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹ ३०

वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य (कोड 1136)—इस पुस्तकमें पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराणमें वर्णित इन तीनों महीनोंके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। मूल्य ₹४५

श्रावणमास-माहात्म्य [सानुवाद] (कोड 1899)—इसमें सोमवार आदि प्रत्येक दिनके व्रतोंके सुन्दर विवेचनके साथ मंगलागौरी, स्वर्णगौरी, दूर्वागणपति, संकटनाशन, रक्षाबन्धन आदि व्रतोंका सुन्दर वर्णन है। मूल्य ₹४०

श्रीसत्यनारायणव्रतकथा (कोड 1367)—इस पुस्तकमें भगवान् सत्यनारायणके पूजनविधिके साथ स्कन्दपुराणसे उद्धृत सत्यनारायणव्रतकथाको भावार्थसहित दिया गया है। मूल्य ₹१५

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org / gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।